मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

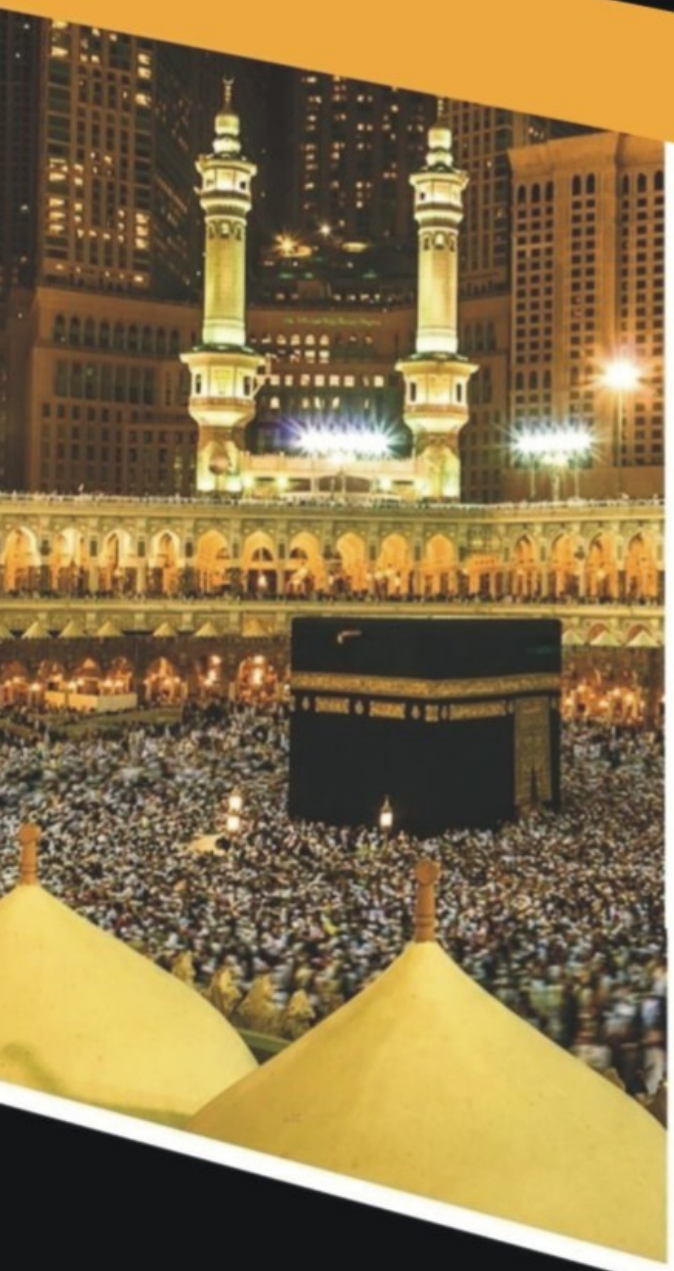

इन्सान की जान व माल का सम्मान

अल्लाह के रसूल स०अ० ने फ़रमाया:

"तुम्हारा ख़ून और तुम्हारा माल तुमपर उसी तरह हराम है, जिस तरह यह दिन (अरफ़ा का) इस महीने (ज़िलहिज्जा) में इस शहर (मक्का मुकर्रमा) में सम्मानयोग्य है।"

(अबूदाऊद)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

SEP 17

₹10/-

अय्यामे तश्रीक़ और तकबीराते तश्रीक़

नवीं ज़िलहिज्जा की फ़ज्र की नमाज़ के बाद से तेरहवीं ज़िलहिज्जा की अस्र की नमाज़ के बाद तक। हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद बुलन्द आवाज़ से मर्दों पर बुलन्द आवाज़ से और औरतों पर आहिस्ता आवाज़ से तकबीर पढ़ना वाजिब है।

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا إِلٰهَ إِلَّااللّٰهُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ وَ لِلّٰهِ الْحَمْدُ

और अगर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद इमाम तकबीर पढ़ना भूल जाये तो मुक़तदियों को चाहिये कि वो बुलन्द आवाज़ से तकबीर पढ़ें। ये तकबीरें एक बार पढ़ना वाजिब और तीन बार पढ़ना सुन्नत हैं।

ईदुल अज़्हा के दिन की सुन्नतें

☆सुबह को जल्दी उठना। ☆मिस्वाक करना। ☆गुस्ल करना। ☆अच्छे कपड़े पहनना।

☆ख़ुशबू लगाना। ☆ईद की नमाज़ ईदगाह में पढ़ना। ☆ईद की नमाज़ से पहले कुछ न खाना। ☆ईदगाह जल्दी जाना। ☆ईदुलअज़्हा की नमाज़ के बाद कुर्बानी का गोश्त खाना। ☆पैदल जाना। ☆एक रास्ते से जाना और दूसरे रास्ते से वापिस आना।

☆रास्ते में तकबीरे तश्रीक़ पढ़ते हुए जाएं:

(اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ لَا إِلٰهَ إِلَّااللّٰهُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ وَ لِلّٰهِ الْحَمْدُ)

कुर्बानी का तरीक़ा

कुर्बानी का सुन्नत तरीक़ा ये है कि जानवर को कम से कम तकलीफ़ दी जाये। उसे ज़्यादा तड़पाया न जाये। ज़मीन पर लिटाने में ऐसा तरीक़ा न अपनाया जाये कि जिससे जानवर घबरा कर बिदकने लगे।। जब जानवर कुर्बानगाह में आ जाये तो उसे जल्द ज़िबह करने की कोशिश की जाये। छुरी और रस्सी वग़ैरह पहले से तैयार रखी जाये, फिर जब कुर्बानी का जानवर क़िब्ला रुख़ लिटा दिया जाये तो पहले ये दुआ पढ़ें:

"إِنِّيْ وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِيْ فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَ الْأَرْضَ حَنِيْفاً وَّ مَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ،
إِنَّ صَلَاتِيْ وَ نُسُكِيْ وَ مَحْيَايَ وَ مَمَاتِيْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعَالَمِيْنَ، لَا شَرِيْكَ لَهٗ
وَ بِذٰلِكَ أُمِرْتُ وَ أَنَا مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ، اَللّٰهُمَّ مِنْكَ وَ لَكَ"

फिर "بِسْمِ اللّٰهِ، اَللّٰهُ أَكْبَرُ" कह कर ज़िबह करे और ज़िबह करने के बाद ये दुआ पढ़े।

"اَللّٰهُمَّ تَقَبَّلْهُ مِنِّيْ كَمَا تَقَبَّلْتَ مِنْ حَبِيْبِكَ مُحَمَّدٍ ،وَ خَلِيْلِكَ إِبْرَاهِيْمَ عَلَيْهِمَا الصَّلَاةُ وَ السَّلَامُ"۔

अगर किसी दूसरे की तरफ़ से कुर्बानी कर रहा हो तो "مِنِّيْ" की जगह "مِنْ" और "مِنْ" के बाद जिसके तरफ़ से कुर्बानी कर रहा है उसका नाम ले।

بسم الله الرحمن الرحيم

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:०९ सितम्बर २०१७ ई० वर्ष:९

संरक्षक

हज़रत मौलाना
सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी
(अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

निरीक्षक

मौ० वाज़ेह रशीद हसनी नदवी
जनरल सेकेरेट्री- दारे अरफ़ात

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाख़ुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

मुद्रक

मो० हसन नदवी

इस अंक में:

वर्तमान भारत और मुसलमान.....२
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हज की सौग़ात.....३
मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

एकेश्वरवाद क्या है?.....५
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

धार्मिक सभाएं – महत्व एवं तरीक़ा.....७
ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

सज्दा सहू के आदेश व मसले.....१०
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

इस्लाम में दुनिया छोड़ने का आदेश नहीं.....१२
अल्लामा इब्ने तैमिया

ईदुल अज़्हा की फ़ज़ीलत और कुर्बानी के कुछ मसले.....१३

मुहब्बत और नफ़रत का स्तर.....१७
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

कुर्बानी की वास्तविकता.....१८
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

प्रति अंक 10रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

सम्पादकीय

वर्तमान भारत और मुसलमान

● बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

इस देश में मुसलमानों का इतिहास बहुत पुराना है। पहली हिजरी शताब्दी के आरम्भ से ही इस्लाम ने सबसे पहले केरल की धरती पर अपने क़दम रखे। यहां के एक राजा ने इस्लाम क़ुबूल किया और इस देश में पहली मस्जिद का निर्माण कराया गया। मुहम्मद बिन क़ासिम (रह0) दूसरी सदी में सिंध के रास्ते से आये और अपने इस्लामी चरित्र व व्यवहार से बहुत जल्दी ही यहां के लोगों को अपना चाहने वाला बना कर चले गये। शायद इतिहास की अनोखी घटना होगी कि किसी विजयी के जाने पर ऐसा शोक मनाया गया हो जो मुहम्मद बिन क़ासिम (रह0) के जाने पर मनाया गया था। इसके बाद कई विजय पताका फहराने वाले आते रहे। महमूद ग़ज़नवी का नाम इस सूची में नुमायां है जिसने पहली बार व्यवस्थित रूप से यहां क़दम जमाए। इसीलिए इसको भारत विजयी (फ़ातह–ए–हिन्द) कहा जाता है मगर घटना यह है कि इस देश को जिस व्यक्ति ने फ़तेह किया वह तलवार के ज़ोर पर नहीं बल्कि वह प्रेम व सदआचरण था जिसने लाखों लोगों के दिलों को जीता और वह ज़ात हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (रह0) की थी।

इस्लाम से पहले यह देश रजवाड़ों में बंटा हुआ था। भारत के संयुक्त स्वरूप की नींव मुसलमानों ने डाली थी और फिर मुग़लकाल में भारत की सीमाएं अपने चरम को पहुंच गयीं। औरंगज़ेब आलमगीर (रह0) का का युग पराकष्ठा का युग है। उनके बाद ही पतन का आरम्भ हुआ और अन्त में अंग्रेज़ों की चालबाज़ियों से देश को साम्राज्य की ओर धकेल दिया गया। मुस्लिम बुद्धिजीवियों (उलमा) ने पहले दिन से अंग्रेज़ी साम्राज्य का विरोध किया और आज़ादी का नारा लगाया। उनको इसकी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी। 1857ई0 की क्रांति में हज़ारों उलमा शहीद कर दिये गये लेकिन आज़ादी की चिंगारी बुझायी न जा सकी और सिलसिला जारी रहा। यहां तक कि मुसलमान और हिन्दुओं ने मिलकर देश को आज़ाद कराया और 1947ई0 में लाल क़िले पर तिरंगा लहराया गया।

यह आज़ादी मुसलमान–हिन्दुओं के संयुक्त संघर्ष से प्राप्त हुई थी और दूसरे धर्मों के लोग भी पहले से इस देश में मौजूद थे। अतः इस देश की बुनियाद धर्मनिरपेक्षता पर रखी गयी और ऐसा क़ानून बनाया गया कि इसमें हर एक को अपने–अपने धर्म पर चलने की आज्ञा दी गयी।

काश कि यह देश उन्हीं नियमों पर चलता रहता जिस पर उसके प्रथम नेतृत्व एवं स्वतन्त्रता सेनानियों ने इसकी बुनियाद रखी थी। लेकिन अफ़सोस की बात है कि वे लोग जिनकी इस देश की आज़ादी में शायद ही ख़ून की कोई बूंद बही हो, वे इस देश को अव्यवस्था की ओर धकेलना चाहते हैं और उससे उनके अपने हित जुड़े हुए हैं।

यह हालात मुसलमानों के लिये विशेष रूप से चिन्तनीय एवं विचारणीय हैं। किसी धर्म या सभ्यता विशेष को थोपना देश के संविधान के भी ख़िलाफ़ है और मुसलमान इसको कभी गवारा नहीं कर सकते। मुसलमानों की अपनी धार्मिक पहचान है। उनका धर्म केवल कुछ आस्थाओं व रस्मों का नाम नहीं है, बल्कि वह एक जीवन व्यवस्था है जिसकी अपनी एक सम्पूर्ण सभ्यता है और जिसके किसी हिस्से को मुसलमान छोड़ नहीं सकता है और यह अधिकार मुसलमानों को इस देश के संविधान ने दिया है। यह छीना नहीं जा सकता है। वर्तमान में जो स्थिति है वह अस्थायी स्थिति है, इसके लिये चिन्ता करना भी आवश्यक है और जागरुक होना भी, लेकिन यह मायूसी के हालात नहीं। इतिहास में मुसलमानों को कई बार इससे भी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है, लेकिन अल्लाह तआला इसी मिट्टी में दबी चिंगारी से शोला पैदा करता है और फिर..... "पासबा मिल गये काबे को सनमख़ाने से" जैसे हालात पैदा होते हैं।

यद्यपि कार्यप्रणाली की आवश्यकता है। अब तक हम मुसलमानों से यह बड़ी लापरवाही हुई कि हम दूसरों के सामने इस्लाम का सही नमूना प्रस्तुत नहीं कर सके। उसकी सही शिक्षाएं उनके सामने नहीं ला सके। सबसे बढ़कर इस समय की आवश्यकता है कि: 1– हम अपने ईमान (आस्था) को ताज़ा करें। 2– आगे आने वाली नस्लों के लिये ईमान की चिन्ता करे, और उसके लिये मकातिब (प्राथमिक विद्यालय) और इस्लामी स्कूल जगह–जगह स्थापित करें। 3– अपने समाज को बेहतर इस्लामी समाज बनाएं। 4– अपने इस्लामी चरित्र से दूसरे के सामने सही इस्लामी नमूना प्रस्तुत करें। 5– उनसे मिलकर उनके ज़हनों को साफ़ करें और इस्लाम और मुसलमानों के बारे में जो भ्रांतियां पैदा हुई हैं उनको दूर करने का प्रयास करें।

इन कुछ बिन्दुओं पर यदि मेहनत होगी तो इंशाअल्लाह (यदि अल्लाह ने चाहा तो) ईमान का सूरज इस देश में जगमगाएगा।

हज की सौग़ात

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी नदवी रह०

हज के बारे में कहा जाता है कि हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने जब अल्लाह की घर की ज़ियारत (दर्शन) के वास्ते हज करने की आवाज़ लगायी थी। उस वक़्त लोगों ने उनका साथ दिया था। लोग आज तक उसी साथ देने के नतीजे में हर साल दुनिया भर से हज करने जाते हैं क्योंकि यह इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की आवाज़ पर साथ देने का एक प्रदर्शन है। किन्तु यदि ध्यान दिया जाए तो मालूम होगा कि यह अस्ल अल्लाह की आवाज़ थी जिसको जन साधारण तक पहुंचाने का आदेश हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) को दिया गया। इसीलिए उन्होंने आवाज़ लगायी। यूं भी हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) के बारे में अल्लाह तआला कहता है:

"मैं तुमको लोगों का मुक़्तदी (नेतृत्व करने वाला) बनाता हूं।" (सूरह बक़रह: 124)

यही वहज है कि हज के सभी अरकान (हिस्सों) में हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की यादों को ही ताज़ा किया जाता है। जिसको पूरी दुनिया के लोग एक ही तरीक़े पर करते हैं। क्योंकि अल्लाह तआला ने हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) को किसी क़ौम या बिरादरी का नेतृत्वकर्ता नहीं बनाया था बल्कि तमाम इन्सानों का इमाम (नेतृत्वकर्ता) बनने का सौभाग्य दिया था। लेकिन इस श्रेष्ठ स्थान की प्राप्ति पर हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने अल्लाह तआला से पूछा: क्या मेरी औलाद में भी इमामत का क्रम जारी रहेगा?अल्लाह तआला ने जवाब दिया: हां, मगर ज़ुल्म करने वाले इस वादे से अलग हैं।

अल्लाह तआला ने हज के अन्दर मुहब्बत की एक चिंगारी रख दी है। क्योंकि अल्लाह के हाथ में सबकुछ है। अगर यूं देखा जाए तो काबा सिर्फ़ एक काले रंग की इमारत है। लेकिन अल्लाह की क़ुदरत का अजीब दर्शन है कि अल्लाह ने उसको ऐसा आकर्षित बना दिया है कि सुन्दर से सुन्दर (गुणी) व्यक्ति भी वहां जाकर अपनी सुन्दरता (गुणों) को, अपने हुस्न को, यहां तक कि ख़ुद को भी भूल जाते हैं। क्योंकि काबा हर एक को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। इसलिए कि अल्लाह तआला ने काबे के अन्दर विशेष आकर्षण रखा है। क्योंकि सारी बातें संबंध से होती हैं और काबा की संबंध ख़ुदा से है। इसलिए जहां यह संबंध आ गया तो एकदम आदमी कहां से कहां पहुंच गया और उसका स्थान इतना श्रेष्ठ हो गया कि उस तक कोई पहुंच नहीं सकता। कोई घर उस घर का मुक़ाबला नहीं कर सकता। इसी तरह क़ुरआन मजीद में वही शब्द हैं जो हम और आप बोलते हैं और ज़बान भी वही है जिसमें लोग बोलते हैं लेकिन चूंकि अल्लाह तआला ने इसको अपना कलाम बनाया है इसलिए एक विशेष प्रकार का आकर्षण पैदा हो जाता है। सुन्दरता व प्रेम के सारे तत्व उभर कर आ जाती है। इसी तरह यूं तो सभी इन्सान बराबर हैं लेकिन जिसको अल्लाह ने कहा: मेरा नबी, तो वहां "मेरा" कहने ही से उसका स्थान श्रेष्ठ हो गया। इसी तरह से किसी बन्दे को अल्लाह ने कहा "मेरा वली" तो फ़ौरन उसका क़द बढ़ गया। हक़ीक़त में इसी का नाम संबंध है और जब अल्लाह का संबंध किसी चीज़ को प्राप्त हो जाता है तो उसका स्थान बहुत श्रेष्ठ हो जाता है। अतः काबे भी यहां उसी प्रकार अल्लाह से संबंधित है।

काबे के अन्दर अल्लाह ने असाधारण करन्ट रखा है। अगर इस करन्ट से हमारा संबंध हो जाए तो आदमी स्वयं ही से हज की तरफ़ चला जाता है। इसीलिये वे लोग जिनके पास न सामान है, न साधन हैं, लेकिन दिल बेचैन और बेताब है तो अल्लाह ने उनसे कहा: मेरे घर आ जाओ और उनके लिये ग़ैब (परोक्ष) से ऐसा इन्तिज़ाम हुआ कि वह वहां पहुंच गये और अल्लाह ने इस तरह से क़ुबूल किया कि उनको उससे बहुत फ़ायदा हुआ क्योंकि अल्लाह ने काबे के अन्दर एक ख़ास कैफ़ियत रखी है, जिसको मुहब्बत करने वाले ही जान सकते हैं। इसीलिए अल्लाह तआला ने हज को हर साहिबे हैसियत (जो वहां जाने की सामर्थ्य रखता हो) पर फ़र्ज़ भी क़रार दिया है ताकि हर व्यक्ति उसकी अदायगी की तरफ़ ध्यान देता रहे।

अल्लाह तआला ने हज का तोहफ़ा पूरी उम्मत को दिया है। लेकिन अब जिस शख़्स को अल्लाह तआला से जितना संबंध होगा और जैसी उसके अन्दर मुहब्बत होगी अल्लाह उसका वैसे ही हज अता करेगा और जो मुहब्बत में डूब कर हज करता है उसके बारे में कहा गया है कि अगर कोई अल्लाह की मर्ज़ी के अनुसार हज की पूर्ति करता है तो वह अपने घर ऐसा वापस होगा जैसे उसकी मां ने उसको अभी जन्मा हो। अर्थात वह आज ही पैदा हुआ हो। कहने का तात्पर्य कि हज के ज़रिये से सारे गुनाह

ख़त्म हो जाते हैं और आदमी बिल्कुल धुला–धुलाया, पाक–साफ़ होकर वहां से वापस आता है। यह अल्लाह तबारक व तआला ने हज की ख़ासियत रखी है।

हज में आदमी को यह कोशिश करनी चाहिए कि जब अल्लाह के दरबार में हाज़िरी हो तो फिर उसके दिल व दिमाग़, उसकी सोच में सिवाए खुदा के कोई मौजूद न हो। बस वह हो और उसके खुदा की मुहब्बत उसके दिल में मौजे मार रही हों। इसीलिए हज की जितनी अदाएं है, वह सब उसी मुहब्बत की दलील देती हैं। और इसीलिए यह नारा भी लगाने का हुक्म दिया गया है:

"ऐ अल्लाह मैं हाज़िर हूं, मैं हाज़िर हूं, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूं, बेशक सारी हम्द और

नेमतें तेरे लिये हैं और मिल्कियत सारी तेरे लिये ही है, तेरा कोई शरीक नहीं है, मैं हाज़िर हूं।"

जिसका अर्थ यह है कि ऐ मालिक हम तेरे दरबार में हाज़िर हैं। तेरा कोई साझी नहीं। एक शिर्क (बहुदेववाद) यह है कि इन्सान ग़ैरुल्लाह (अल्लाह के अलावा) को शामिल करे और दूसरा शिर्क यह है कि ग़ैरुल्लाह को दिखावे के लिये इन्सान कोई काम करे। लेकिन दोनों शरीक ही माने जाएंगे। इसीलिए इसमें बार–बार "ला शरीका लका" का जो शब्द है उसमें उन्हें दोनों बातों की रद्द की गयी है। लेकिन शिर्क आजकल इस हद तक लोगों की प्रकृति में दाख़िल हो चुका है कि लोग ऐसे पवित्र स्थानों को भी शिर्क से ख़ाली नहीं छोड़ते। हज के दरमियान एक साहब का वाक़्या आता है कि उनका एक अरब ने दौराने तवाफ़ हाथ पकड़ा, क्योंकि वह तवाफ़ करते हुए "लबबैक या अब्दुल क़ादिर" का नारा लगा रहे थे।

हज को इन तमाम बातों से बिल्कुल पाक रखना चाहिये और हज के दौरान कहीं भी ग़ैर का साया नहीं आना चाहिये। इसीलिए जब पहले ज़माने में लोग हज को जाते थे तो किसी से नहीं बताते थे, ताकि किसी तरह की दिखावे की छाया मन के अन्दर न हो। लेकिन आजकल न जाने क्या–क्या होता है?हालांकि यह बस बातें इस्लाम के विपरीत हैं। जिनसे इस्लाम का कोई संबंध नहीं है। तात्पर्य यह कि हर इन्सान को चाहिये कि वह हज के लिये हर वक़्त तैयार रहे और उसका शौक़ हमेशा रहे और यह इच्छा रखे कि अल्लाह के दरबार में हाज़िरी नसीब हो जाए। जिस तरह ज़कात नमाज़ का पूर्ति है उसी तरह हज रोज़े की पूर्ति है कि रोज़े में इन्सान को अल्लाह तआला से असाधारण संबंध पैदा होता है और उसी संबंध की सुलगी हुई चिन्गारी के नतीजे में इन्सान की लगी हुई प्यास को हज पूरी तरह से बुझा देता है। अतः जब इन्सान अल्लाह के दरबार में हाज़िरी देता है तो उसकी मुहब्बत की प्यास बुझ जाती है और उसकी बेचैनी की कैफ़ियत भी ख़त्म हो जाती है।

इस्लामी इबादतों में हज एक महान इबादत है और हदीस शरीफ़ में आता है कि इबादत का निचोड़ दुआ है। इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तमाम कामों को अदा करने में इन्सान दुआ करना बिल्कुल न भूले। दुआ इन्सान की बन्दे होने की शान को और अधिक चमका देती है और अल्लाह तआला इन्सान को दुआ के नतीजे में बहुत कुछ नवाज़ता है। यद्यपि यह अलग बात है कि दुआ मांगने पर फ़ौरन मिल जाए या बाद में मिले। क्योंकि अल्लाह के सामने हर इन्सान बच्चा है। यानि बहुत छोटा है और जब बच्चा कोई चीज़ मांगता है तो वह चीज़ चाहे जितनी बड़ी हो या कितनी छोटी हो उसको सोच–समझ कर ही दी जाती है। ताकि उससे कहीं नुक़सान न हो जाए। जैसे टाफ़िया हैं जो बच्चों को खुश करने के लिये दी जाती हैं और बच्चे मांगते भी हैं। लेकिन कुछ चीज़े हैं जो बच्चों को नहीं दी जाती, क्योंकि वह नुक़सान पहुंचाती हैं। इसलिए देखकर दिया जाता है। चाहे बच्चा कितना ही मांगे, लेकिन दिया नहीं जाता और उसमें न देने की वजह यह नहीं है कि वह व्यक्ति उससे नाराज़ है बल्कि उसको उससे नुक़सान न हो जाए। इसी तरह इन्सान अल्लाह तआला से दुआ मांगता है तो चूंकि अल्लाह तआला हकीम (तत्वदर्शी) है और वह जानता है कि कौन सी चीज़ बेहतर है। इसीलिए अगर वह चीज़ बेहतर होती है तो उसी वक़्त दे दी जाती है वरना उस वक़्त नहीं दी जाती है बल्कि उसके बाद दुआ के बदले में उसको बेहतर चीज़ दी जाएगी। इसीलिए हदीस में आता है कि जो दुआ दुनिया में ऐसा लगता है कि कुबूल नहीं होती है, उसका बदला आख़िरत में दिया जाएगा और उस वक़्त बन्दा यह सोचेगा कि काश कोई दुआ कुबूल ही न हुई होती। क्योंकि वहां उस पर बहुत ज़्यादा अज्र (पुण्य) मिल रहा होगा। दुआ के अन्दर एक बात का ख़ास ख़्याल रहे कि दुआ दिल से की जाए। क्योंकि दुआ जिस क़दर इख़्लास (शुद्ध) से होगी, उतनी ही कुबूल होगी। इसलिए कि दुआ के लिये शुद्धता शर्त है और बद्दुआ के लिये परेशानी शर्त है। जो जितना परेशान होगा उतनी तेज़ उसकी बद्दुआ लगेगी और जो जितना इख़्लास वाला होगा वैसे ही उसकी दुआ कुबूल होगी। इसीलिए हरम शरीफ़ (काबा) की ज़ियारत (दर्शन) करने वालों को चाहिये कि वे ख़ूब दुआंए करें।

क्रमवार:

एकेश्वरवाद क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ग़ैब (परोक्ष ज्ञान) की कुन्जियां:

"यक़ीनन अल्लाह ही के पास क़यामत (सृष्टि) का इल्म (ज्ञान) है और वही बारिश करता है और गर्भाशय के अन्दर जो कुछ है उसको जानता है और कोई भी नहीं जानता कि कल वह क्या करेगा और कोई नहीं जानता कि किस जगह उसकी मौत होगी निसंदेह अल्लाह ख़ूब जानता पूरी ख़बर रखता है।" (सूरह लुक़मान: 34)

क़यामत (महाप्रलय):

इस आयत में पांच चीज़ें का वर्णन किया गया है, उनको "मफ़ातिहुल ग़ैब" कहते हैं यानि यह ग़ैब की वे पांच चीज़ें हैं जिनको कोई नहीं जानता। उनमें सबसे पहली चीज़ क़यामत है। जिसका ज्ञान सिर्फ़ अल्लाह ही के पास है और अगर कोई उसके बारे में सवाल भी करे तो अल्लाह उससे खुश नहीं होता। कुरआन इसको स्पष्ट करता है: "वे आपसे क़यामत के बारे में पूछते रहते हैं कि कब उसके बरपा होने का वक़्त है। कह दीजिए कि उसका इल्म तो मेरे रब के पास है। वही अपने वक़्त पर उसको ज़ाहिर कर देगा। आसमानों और ज़मीन पर वह भारी है। अचानक ही वह तुम पर आ जाएगी। वह आपसे ऐसा पूछते हैं जैसे आप उसकी कुरेद में हैं। कह दीजिए उसका पता अल्लाह ही को है लेकिन अक्सर लोग बेख़बर हैं।" (सूरह आराफ़: 187)

इस आयत में तक़रीबन पांच–छः जुमले ऐसे इस्तेमाल किये गये हैं जिनमें बार–बार इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि क़यामत का ज्ञान सिवाए अल्लाह के किसी के पास नहीं है। अल्लाह तआला ने इसको अपने पास छिपाए रखा है। किसी के लिये इसको ज़ाहिर नहीं किया। कोई बड़े से बड़ा नबी हो, कोई फ़रिश्ता हो, अल्लाह ने क़यामत को सबसे छिपाए रखा है। यद्यपि क़यामत की निशानियां बयान की हैं। लेकिन निशानियां भी दो तरह की हैं। बहुत सी क़रीबी निशानियां हैं। तो जो साधारण पहचान हैं वह तो ऐसी हैं कि सैंकड़ों हज़ारों साल पहले उनका आरम्भ हो सकता है। जैसे: आपने अपने आने को क़यामत की निशानी बताया। कहा कि मैं आ गया और मैं आख़िरी नबी हूं, अब मेरे बाद कोई नबी आने वाला नहीं, अब मेरे बाद क़यामत आयेगी। अर्थात यह भी क़यामत की निशानियों में से एक है। इसके अलावा बहुत सी क़रीबी निशानियां रसूलुल्लाह (स0अ0) ने बयान की हैं। वह ऐसी हैं कि जब वे आ जाएंगी तो यह माना जाएगा कि क़यामत बिल्कुल क़रीब होगी। तब वे निशानियां प्रकट होंगी। जैसे दज्जाल का निकलना, हज़रत ईसा (अलैहिस्सलाम) का उतरना और आख़िरी निशानी सूरज का पूरब के बजाए पश्चिम से निकलना। जिसके बाद तौबा का दरवाज़ा बन्द हो जाएगा। तो यह निकटवर्ती निशानी हैं और जो दूर की निशानी हैं उनमें से भी कोई क़यामत को तय नहीं कर सकता कि क़यामत कब आयेगी, क्योंकि अल्लाह तआल ने इसको छिपाया है और इसलिए छिपाया है कि यह इम्तिहान का दिन है और अल्लाह ने दुनिया में इन्सानों को इस मक़सद से भेजा है कि वह देखे कि लोग कैसे आमाल (कर्म) करते हैं। अब उन कर्मों का जो बदला मिलना है, उस दिन को अल्लाह ने छिपा रखा है। इसलिए कि अगर यह चीज़ तय हो जाती तो इसका स्वरूप बदल जाता। इम्तिहान की चीज़ें आम तौर छिपी हुई होती हैं। इसीलिए अल्लाह तआला ने क़यामत को भी छिपा रखा है ताकि लोग उसकी तैयारी करें। इसीलिए जब जिसकी मौत आयेगी, वह समझे कि उसकी क़यामत आ गयी और अगर कोई ज़िन्दा रहा और क़यामत उस पर आ गयी तो उसका मामला उसके साथ है। अल्लाह तआला ने अपने बन्दों के साथ इन्साफ़ का मामला करेंगे। बन्दों ने जैसे कर्म किये होंगे, उसी के अनुसार अल्लाह के यहां उसका बदला दिया जाएगा।

बारिश:

ऊपर की आयत में दूसरी चीज़ फ़रमायी गयी: "यानि वही बारिश उतारता है और वही यह भी जानता है कि बारिश कब होगी।" बारिश नाज़िल करने का जो काम है, यह ऐसा होता है कि इस सिलसिले में दुनिया ने बहुत कोशिश की, जहां सूखा होता है, बारिशें कम होती हैं तो जो बड़ी उन्नतिशील क़ौमें हैं, उन्होंने बहुत कोशिशें की किकिसी सूरत से भी बारिश हो जाए। उनको कुछ कामयाबी तो मिली लेकिन इसमें इतनी लम्बी रक़म ख़र्च हुई कि उसका दस प्रतिशत भी हासिल न हुआ। तो साफ़ है कि उस बारिश से जिससे फ़ायदे के बजाए नुक़सान हो कुछ हासिल होन वाला नहीं। अर्थात बाहर के कुछ देशों ने कुछ बारिश करने की शक्ल पैदा की, भाप पैदा की, कुछ गैसे जमा कीं, और न जाने क्या–क्या किया। इस पर इतना ख़र्च हुआ और उसके बाद बारिश बहुत मामूली हुई।

कुछ बूंदे गिरीं और उसका भी कोई फ़ायदा न हुआ। उससे यह बात अधिक स्पष्ट हो गयी कि बारिश की व्यवस्था केवल अल्लाह की कुदरत में है। वह जब चाहता है बारिश करता है, जहां चाहता है करता है और कब बारिश होगी यह अल्लाह तआला के ज्ञान में है। आजकल मौसम विभाग वाले भविष्यवाणी करते रहते हैं। लेकिन आम तौर पर उसका उल्टा ही होता है। कभी उन्होंने कहा कि बारिश कम होगी तो बहुत होती है। यहां तक कि तबाही भी आ जाती है। वास्तव में उनका एक अंदाज़ा होता है जो हवाओं की रफ़्तार से तय करते हैं। हवाओं की जो रफ़्तार है उसको बाक़ायदा यन्त्रों से नापकर भविष्यवाणी करते हैं कि उतने समय पर फ़लां जगह यह बादल पहुंचेगे। यह बादल बरसने वाले हैं तो उम्मीद है फ़लां जगह पर यह पहुंचेगे। यह बादल बरसने वाले हैं तो उम्मीद है कि फ़लां जगह बारिश होगी। लिहाज़ा कभी अल्लाह चाहते हैं तो वही करते हैं और अगर नहीं चाहते तो नहीं करते।

कहने का तात्पर्य यह कि यह चीज़ भी ऐसी है जो कोई नहीं जानता और यह सब अल्लाह के अधिकार में है। फ़िरऔन के ज़माने का क़िस्सा मशहूर है कि एक बार सूखा पड़ा। अतः उसके हाली–मवाली सब जमा हुए और कहा कि आप तो ख़ुदा हैं, बारिश करवा दीजिए। बहुत परेशानी है। अब उसको कुछ समझ में नहीं आया। अतः उसने अपने उन जिन्नात को बुलाया जो शैतानों की योग्यता रखते थे और कहा कि बड़ी मुसीबत पड़ गयी है। तुम लोग कोई उपाय करो कि बारिश हो जाए। उन्होंने कहा क्या मुश्किल है। रात को अपने कारिन्दों को भेज दिया। उन्होंने फ़िज़ा पर जाकर पेशाब किया तो बारिश क्या हुई एक आफ़त आ गयी।

गर्भाशयः

उपरोक्त आयत में तीसरी चीज़ बयान की गयी कि "माओं के पेट में क्या है वही जानता है।" और कोई नहीं जानता है। अब कोई कहे कि अब तो अल्ट्रासाउन्ड होता है। उससे मालूम हो जाता है कि क्या है। बच्चा है या बच्ची है। अपूर्ण है या पूर्ण है। लेकिन साफ़ बात है कि वह अल्ट्रासाउन्ड से मालूम होता है। यानि देखकर मालूम होता है। अगर कोई बिना देखे बताए तो यह ग़ैब (परोक्ष) है और जब देखकर बता रहा है तो यह ग़ैब कहां है?वह तो सामने की चीज़ है। सामने की चीज़ कोई भी देखकर बता सकता है, दूसरी बात यह है कि वह सिर्फ़ यही बता सकता है कि लड़का है या लड़की, अपूर्ण है या पूर्ण है। लेकिन किस चीज़ में अपूर्ण व पूर्ण है?चरित्र कैसा है और उसका दिमाग़ कैसा होगा?वह किस परिस्थिति के साथ पैदा होगा। यह सारी चीज़ें अल्लाह ही जानता है और कोई नहीं जानता। कोई डॉक्टर से पूछ कि दिमाग़ उसका ठीक है या नहीं?बुद्धिवान है या बुद्धिहीन है या कमज़ोर है या और क्या–क्या है?यह सारी जो अन्दर की चीज़ें हैं यह अल्ट्रासाउन्ड के बाद भी पता नहीं चलतीं। यह सब चीज़ें अल्लाह तआला ही जानता है। यह सब कोई नहीं जानता और जो ज़ाहिर चीज़े बतायी जाती हैं, यह देखकर बतायी जाती हैं, जिसका संबंध परोक्ष से नहीं है।

कल का इल्मः

चौथी चीज़ बतायी गयी कि कोई नहीं जानता कि वह कल क्या करेगा?उस चीज़ का तो सब ही को अनुभव है। कभी–कभी आदमी बड़े–बड़े इरादे करता है। लेकिन वह जो सोचता है होता बिल्कुल उसके उल्टा है। हर व्यक्ति अपने जीवन में देखे तो इस तरह की एक–दो नहीं, दसियों–बीसियों मिसालें मिलेंगी। हज़रत अली (रज़ि0) का वाक्य बहुत प्रसिद्ध है कि मैंने अपने रब को इरादो के टूटने से जाना। हम सब जानते हैं कि आदमी कैसे–कैसे इरादे करता है कि यह करेंगे, यह करेंगे, यह करेंगे। लेकिन ऐसी–ऐसी बाधाएं सामने आ जाती हैं, जिसको कभी सोचा भी नहीं होता। आदमी सोचता भी नहीं कि ऐसा भी हो सकता है। लेकिन अल्लाह का हुक्म है कि जब अल्लाह चाहता है तो सब होता चला जाता है। इन्सान जितने इरादे करता है। वह सब होते चले जाते हैं। लेकिन अगर अल्लाह का फ़ैसला न हो तो बेशुमार रुकावटे खड़ी होती चली जाती हैं। ऐसी रुकावटें कि दूर करना चाहे तो न कर सके। तो यह चीज़ ऐसी है कि कल के बारे में आदमी क्या करेगा कोई नहीं जानता। आदमी अपने तौर पर फ़ैसला करता है, इरादे करता है, प्लानिंग करता है, लेकिन अल्लाह के ऐसे फ़ैसले होते हैं कि सारी प्लानिंग धरी रह जाती है। राष्ट्रीय स्तर पर भी उसकी मिसालें मौजूद हैं। संगठन के स्तर पर भी मिसालें मौजूद हैं, व्यक्तिगत स्तर पर भी मौजूद हैं।

मौत का ज्ञान

पांचवी बात कही गयी कि कोई नहीं जानता कि उसकी मौत कहां आयेगी। यह भी एक ऐसी हक़ीक़त है कि आदमी क्या–क्या तमन्नाएं करता है। लेकिन होता वही है जो अल्लाह का हुक्म होता है और उसकी कोई उपाय काम नहीं करता।

धार्मिक सभाएं - महत्व एवं तरीक़ा

मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी

अल्लाह तआला ने पूरी इन्सानियत को; बल्कि जिन्नों को भी अपनी इबादत करने के लिये पैदा किया है। लेकिन इस उम्मत (समुदाय) के लिये सिर्फ़ इबादत काफ़ी नहीं है। उसे यह श्रेष्ठता दी गयी है कि वह नुबूव्वत का सिलसिला ख़त्म होने के बाद नुबूव्वत के काम को अंजाम दे और वह यह है कि अल्लाह के बन्दों को "नेकी की तरफ़ बुलाए और बुराई से रोके।" इसी को कुरआन मजीद में "अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर" का नाम दिया गया है।

"मारूफ़" का वास्तविक अर्थ मशहूर और जानी–पहचानी चीज़ का है। मक़सद यह है कि नेकी की तरफ़ इस हद तक दावत दो कि समाज में उसका आम चलन हो जाए। वह चलन व रिवाज का दर्जा हासिल कर ले और हर ख़ास व आम उसके अनुसार कार्य किया करे। "मुनकर" ऐसी चीज़ को कहते हैं जो अनजानी और अपरिचित हो, जो मशहूर न हो और जो आदत व रिवाज के ख़िलाफ़ हो। कुरआन मजीद ने बुराई को मुनकर का नाम देकर इस तरफ़ इशारा किया है कि बुराई को इस हद तक रोका जाए कि वह समाज में एक अनजान चीज़ बन जाए, जो आम रिवाज व चलन के ख़िलाफ़ हो।

यह स्थिति उसी समय पैदा हो सकती है जब समाज में मारूफ़ (प्रचलन) की दावत और बुराई से रोकने की मुहिम पूरी अहमियत और गंभीरता के साथ अंजाम दी जाए। इमाम ग़ज़ाली (रह0) ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है: "बेशक नेकी की दावत और बुराई से रोकना दीन का सबसे बड़ा स्तम्भ (कुतुब–ए–आज़म) है। यह वह अहम काम है जिसके लिये अल्लाह ने तमाम नबियों (संदेष्टाओं) को भेजा। अगर इसकी बिसात लपेट दी गयी, उसके इल्म और उस पर इल्म से लापरवाही की गयी तो नुबूव्वत का काम टल जाएगा। दीनदारी में एक प्रकार का पतन आ जाएगा, गिरावट आ जाएगी, गुमराही फैल जाएगी, जिहालत बढ़ जाएगी, फ़साद बढ़ जाएगा, तहाबी फैल जाएगी, शहर वीरान हो जाएंगे, अल्लाह के बन्दे नष्ट कर दिये जाएंगे और उन्हें अपने नष्ट होने का एहसास भी क़यामत से पहले नहीं हो सकेगा।

दीन की दावत का कोई ख़ास तरीक़ा कुरआन व हदीस में तय नहीं किया गया। निवेदक की योग्यता, जिससे निवेदन किया गया है उसका स्वभाव और माहौल के अनुसार विभिन्न तरीक़ो पर दीन की दावत के कर्तव्य का निर्वाहन किया जाता रहा है। मुस्लिम हुकूमतों का कर्तव्य है कि वह ताक़त की लाठी का इस्तेमाल करके मुआशरे में नेकियों को रिवाज दें और बुराइयों को रोंके। शरीअत सम्पूर्ण रूप से रहमत है। अल्लाह तआला रहमान व रहीम हैं और जिन पर शरीअत नाज़िल की गयी है, वे रहमतुल लिल आलमीन (दोनों जहां के लिये रहमत) हैं, इसके बावजूद जुर्म पर पकड़ करने का हुक्म दिया गया और बहुत से जुर्मों पर बहुत सख़्त सज़ा तय की गयी। यह इसीलिए है कि कई बार नेकी की दावत देने और बुराई से रोकने के लिये ताक़त व कूव्वत (शक्ति) का इस्तेमाल भी होता है। मस्जिदों में जुमा व ईद के ख़ुत्बों का एहतिमाम और कभी–कभी लोगों से प्रशिक्षण व सुधार की बातचीत का मक़सद भी दीन की दावत ही है। ख़ानक़ाहें और मदरसे दिन–रात जिस काम में लगे हुए हैं, वह भी दावत–ए–दीन है। इसके अलावा व्यक्तिगत और सामूहिक मुलाक़ातों के ज़रिये लोगों का ध्यानाकर्षण करना भी दावत का एक प्रभावपूर्ण तरीक़ा है और यह भी हदीस से साबित है।

ग़ैर मुस्लिमों या मुसलमानों के एक गिरोह को जमा करके उन्हें दीन की तरफ़ बुलाना भी दावत का एक ऐसा तरीक़ा है जो रसूलुल्लाह (स0अ0) से भी साबित है और रसूलुल्लाह (स0अ0) से पहले आने वाले पैग़म्बरों के अमल से भी। कुरआन मजीद में हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) हजरत लूत (अलैहिस्सलाम) हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) इत्यादि की दावत के भाषण नक़ल किये गये हैं। जिनमें "ऐ मेरी क़ौम" से ख़िताब किया गया है। इसका साफ़ मतलब यह है कि जिस वक़्त अल्लाह के इन

नबियों ने दावत पेश की उस वक़्त उनके सामने बहुत सारे लोग मौजूद थे। हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) का मिस्र के फ़िरऔन से, फ़िरऔन के जमा किये हुए जादूगरों से और खुद अपनी क़ौम बनी इस्राईल से बार–बार सम्बोधन का वर्णन स्वयं कुरआन मजीद में आया है। इसी तरह हज़रत ईसा (अलैहिस्सलाम) का अपने हवारियों (साथियों) से सम्बोधन का वर्णन कुरआन मजीद में भी है और बाइबिल में भी और बाइबिल के बयान से मालूम होता है कि आपने यहूदियों और ख़ास करके यहूदी उलमा (ज्ञानियों) से भी समाज सुधार पर विचार–विमर्श किया है।

रसूलुल्लाह (स0अ0) ने अपनी दावत का आरम्भ भी इसी अंदाज़ पर किया। जब आदेश दिया गया कि आप अपने ख़ानदान के लोगों को (इस्लाम की) दावत दें: "और अपने क़रीबी रिश्तेदारों को डराइये" (सूरह शूरा: 412)

तो आपने बनू हाशिम और बनू मुत्तलिब को एकत्र किया। उनके लिये खाने का भी प्रबन्ध किया और फिर उनको तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत दी; बल्कि बहुत से जीवनी लिखने वालों के बयान से लगता है कि आपने दो बार ऐसा किया। फिर जब आपको खुले तौर पर दीन की दावत का आदेश दिया गया तो आपने सफ़ा (पहाड़) की चोटी पर चढ़कर तमाम मक्का वालों को उस पहाड़ के दामन में जमा किया और उन्हें सम्बोधित किया। मक्का की विजय और अन्तिम हज के मौक़े पर आपने जो प्रभावपूर्ण बातें बतायीं हैं, वे हदीस व सीरत (रसूलुल्लाह (स0अ0) का चरित्र चित्रण) की किताबों में मौजूद हैं। अल्लाह तआला अपनी कृपा बनाए रखे मौलाना मुहम्मद युसूफ़ कांधलवी (रह0) पर कि उन्होंने बहुत ही खोज–पड़ताल करके और क्रमवार तरीक़े के साथ "हयात–ए–सहाबा" में उन विषयों को जमा कर दिया है।

इससे मालूम हुआ कि दावत का एक सुन्नत और प्रभावपूर्ण तरीक़ा लोगों के एक गिरोह को एकत्र करके उनके सामने अपनी बातें रखना भी है। मौजूदा दौर में हम में इसी को जलसा, इज्तिमा या कांफ़्रेस इत्यादि कहते हैं। माशा अल्लाह मज़हबी (धार्मिक) जमाअतें, संस्थाएं, संगठन, दीनी मदरसे, अंजुमनें और आम मुसलमान ऐसी सभाओं और जलसों को करते हैं, यह एक खुशी की बात है और निसंदेह समाज पर इसका असर पड़ता है; शर्त यह है कि वक्ता सकारात्मक बातें करें और मुसलमानों में नफ़रत फैलाने वाली बातों से बचें। अतः दूसरे धर्मों के पैरोकारों में ऐसी सभाओं का विचार नहीं था; लेकिन अब वे भी मुसलमानों को देखकर ऐसे प्रोग्राम करने लगे हैं।

मगर कोई भी काम उसी वक़्त बेहतर और अज्र व सवाब वाला होता है, जब कि वह अल्लाह और उसके रसूल (स0अ0) के आदेशानुसार हो और दीन व शरीअत के स्वभाव के अनुकूल हो। कोई काम देखने में बहुत अच्छा लगे और उस पर अल्लाह और उसके रसूल (स0अ0) के प्रमाण की मोहर न हो तो वह काम प्रभावपूर्ण नहीं है और आम तौर पर ऐसा काम परिणाम देने वाला भी नहीं हुआ करता। जैसे नमाज़ को दीन का स्तम्भ घोषित कर दिया गया है और रसूलुल्लाह (स0अ0) ने उसको अपनी आंखों की ठंडक कहा है; लेकिन वही नमाज़ अगर सूरज निकलने के समय, सूरज के आधे आसमान अर्थात सर के ठीक ऊपर पर होने के समय और सूरज के डूबने के समय पढ़ी जाए तो सवाब का काम नहीं; बल्कि गुनाह की बात है। क्योंकि यह रसूलुल्लाह (स0अ0) की हिदायत के ख़िलाफ़ है और क्योंकि इसमें सूरज की उपासक क़ौमों से समानता पायी जाती है।

इसी नियम पर हमें इज्तिमों और जलसों का भी निरीक्षण करना चाहिए। अफ़सोस कि आजकल हमारी धार्मिक सभाओं और दीनी इज्तिमों में भी कई ग़ैर शरई काम शामिल हो गये हैं। जैसे बहुत बार बिना इजाज़त बिजली के खम्बों पर तार डाल दिया जाता है। तथा न बिजली विभाग से इजाज़त ली जाती है और न उजरत दी जाती है। सड़कों को घेरकर जलसे किये जाते हैं। हालांकि उस जगह से आम लोगों का और ख़ासकर राहगीरों का हक़ संबंधित है। प्रशासन से भी आज्ञा नहीं ली जाती। निसंदेह यह सूरतेहाल बिजली और जगह की चोरी और ग़ज़ब में शामिल है। अस्ल में हमवतन भाई भी ऐसी हरकतों को करते हैं; लेकिन ज़ाहिर है कि हमारे लिये उनका काम आदर्श नहीं हैं। हमारे लिये तो कुरआन और हदीस और सहाबा का तरीक़ा दलील है।

कई बार सभाओं में फ़िज़ूल ख़र्ची भी हद से गुज़र जाती है। ज़रूरत से ज़्यादा रोशनी, कुमकुमे, फूल, पत्ती, स्वागत गेट, डाइस का डेकोरेशन, हालांकि दीन की बात पहुंचाने के लिये इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं। रसूलुल्लाह (स0अ0) ने तो इस्तिन्जा, वुज़ू इत्यादि में भी ज़रूरत से ज़्यादा पानी के इस्तेमाल को पसंद नहीं किया, अगरचे कोई शख़्स नहर के किनारे पर हो?आपने सोते वक़्त चिराग़ को बुझा देने का हुक्म दिया। कुरआन व हदीस में कसरत से फ़िज़ूल ख़र्ची यानि बिना ज़रूरत या ज़रूरत से

ज़्यादा ख़र्च को मना किया यगा है। क्या दीनी प्रोग्रामों के लिये इस फिज़ूल ख़र्ची की इजाज़त हो सकती है?

हमारे यह प्रोग्राम कई बार आम लोगों को लिये तकलीफ़ की वजह बन जाते हैं, ख़ासकर पूरे मुहल्ले में प्रोग्राम को प्रसारित करना, मुसलमानों, ग़ैरमुस्लिमों, सेहतमन्दों, बीमारों सभी उसको उसके सुनने पर मजबूर करना, बहुत से लोगों के लिये तकलीफ़ की वजह बनता है। कुरआन मजीद की तिलावत से बढ़कर कौन सा ज़िक्र है। लेकिन अल्लाह तआला ने रसूलुल्लाह (स0अ0) को हिदायत दी कि नमाज़ में न बहुत ज़ोर से तिलावत करें न बहुत धीमें से कि नमाज़ी भी न सुन सकें। बल्कि आवाज़ संतुलित रखें। रसूलुल्लाह (स0अ0) को लोगों की राहत का इस हद तक पास व लिहाज़ था कि आप सलाम भी ऐसी आवाज़ में करते जिससे सोने वालों को तकलीफ़ न हो। दीन के इस स्वभाव को ध्यान में रखते हुए मशहूर हनफ़ी फ़क़ीह (इस्लामी मामलों के ज्ञाता) अल्लामा इब्ने नजीम मिस्री (रह0) कहतें हैं कि रात का वक़्त हो गया हो, लोग सोये हुए हों और इस समय कोई व्यक्ति ज़ोर से कुरआन मजीद पढ़े तो वह गुनहगार होगा। सोचिये कि हमारा यह तरीक़ा क्या अल्लाह तआला के हुक्म, रसूलुल्लाह (स0अ0) की सुन्नत और शरीअत के स्वभाव के अनुकूल है?

यह भी होता है कि हम भावनाओं में बहकर इस बात का भी ध्यान नहीं रखते कि कहीं हम दीन की सम्मान के नाम पर दीन का अपमान तो नहीं कर रहे हैं?कुरआन मजीद का अदब यह है कि जब कुरआन पढ़ा जाए तो लोग ख़ामोश रहें और ध्यान से सुनें। अगर कोई मजलिस कुरआन की तिलावत के लिये आयोजित की गयी है और उसमें लोग बातचीत करने लगें तो बात करने वाले गुनाहगार होंगे और अगर कहीं लोग अपनी ज़रूरतों में लगे हों और वहां कोई शख़्स कुरआन मजीद की तिलावत शुरू कर दे, नतीजा यह हो कि लोग कुरआन की तरफ़ ध्यान न दें सकें, खाने–पीने, ख़रीद–बिक्री, बात–चीत और दूसरी ज़रूरतों में लगे रहें तो कुरआन पढ़ने वाला गुनाहगार होगा। इसलिए कि वही शख़्स ग़लत वक़्त और ग़लत जगह का चुनाव करके कुरआन मजीद के अपमान का कारण बन रहा है। आजकल हमारी धार्मिक सभाएं में साधारणतयः यही होता है। कुरआन पढ़ा जाता है। दीनी बातें बयान की जाती हैं। सभागार से बाहर दूर–दूर तक आवाज़ पहुंचाने की व्यवस्था की जाती है। लोग दुनिया के कामों में लगे रहते हैं। कुरआन की तिलावत और दीन की बातें उनके कानों तक पहुंचती है, लेकिन अपने कामों की वजह से न वे सुनते हैं और न वे ख़ामोश रहते हैं। क्या हमारा यह तरीक़ा कुरआन मजीद के और दीनी बातों के अपमान के बराबर नहीं है?फिर और सितम यह कि कभी–कभी हम कलिमा तैय्यबा, कुरआनी आयात, अहादीस, अल्लाह और अल्लाह के रसूलों के नाम के झंडे, पोस्टर, बैनर इत्यादि भी लगाते हैं और जलसा ख़त्म होने के बाद यह नहीं देखते कि उनका क्या हुआ?यह मुबारक और पवित्र कागज़ और कपड़े के टुकड़े सड़कों पर गिरते हैं और लोगों के क़दमों तले रौंदे जाते हैं। इसके अपमान की ज़िम्मेदारी किस पर आती है?

रसूलुल्लाह (स0अ0) ने इशा के बाद जागने और बात करने से मना किया। ख़ुद आपका तरीक़ा यह था कि सिवाए इसके कि कोई ज़रूरी दीनी बात हो, इशा के बाद आराम किया करते थे। इशा के बाद जल्दी सोने का एक ख़ास मक़सद यह है कि लोग आसानी से फ़ज्र की नमाज़ अदा कर सकें और जिन लोगों को तहज्जुद पढ़ने की तौफ़ीक़ हो, वह आख़िर शब में जाग सकें। लेकिन कभी–कभी यह जलसे देर रात तक होते रहते हैं और उसके नतीजे में बहुत से सुनने वाले फ़ज्र की नमाज़ से वंचित रह जाते हैं। क्या जलसों का यह तरीक़ा दीन के स्वभाव के अनुकूल है?

अर्थात यह कि जलसे और सभाएं धर्म के प्रचार–प्रसार व समाज सुधार के प्रभावपूर्ण साधन हैं। यह नबियों और रसूलों की सुन्नत हैं; लेकिन यह भी ज़रूरी है कि उनका आयोजन करने में शरीअत की सीमाओं और दीन के स्वभाव को ध्यान में रखा जाए। यह दूसरों के लिये तकलीफ़देह न हों। ज़ोरज़बरदस्ती न हो। ग़ैर शरई तरीक़े पर ऐसी चीज़ों का इस्तेमाल न किया जाए जिनके हम मालिक नहीं है। यह जलसे सिर्फ़ कान की लज़्ज़त का सामान न हों; बल्कि उनके ज़रिये उम्मत को अमल का पैग़ाम मिले, हम अपनी सभाओं के लिये कुरआन व हदीस और सहाबा के अमल को बुनियाद बनाएं, न कि हम जोश व जज़्बे में दूसरों के तरीक़ों की पैरवी करने लगें। तभी यह जलसे समाज में अच्छा बदलाव लाने और समाज को एक आदर्श समाज बनाने में सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं। काश! हम पूरी सद्भावना के साथ ठन्डे दिल से इन सच्चाइयों पर विचार करें!

सज्दा सहू के आदेश व मसले

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

सज्दा सहू कब तक कर सकता है?

अगर किसी शख़्स पर सज्दा सहू करना वाजिब था, लेकिन उसे याद न रहा और उसने भूले से सलाम फेर दिया, तो जब तक कोई नमाज़ के विपरीत काम न कर दे, जैसेः किसी से बातचीत, क़िब्ला से सीना फ़ेरना वग़ैरह तो याद आ जाने पर हुक्म यह है कि सज्दा सहू करके नमाज़ मुकम्मल कर ले। (शामी)

इसी तरह अगर किसी ने जैसे चार रकआत वाली नमाज़ में दो ही रकआत पर इस गुमान से सलाम फेर दिया कि चार रकआत पूरी कर चुका है फिर याद आ गया तो अगर वह चार रकआत पूरी कर ले और आख़िर में सज्दा सहू कर ले। नमाज़ हो जाएगी। (शामी)

वित्र में दुआ–ए–कुनूत का तर्क कर देना

वित्र की नमाज़ में दुआ–ए–कुनूत वाजिबात में से है। लिहाज़ा अगर इसको भूले से छोड़ दिया ता सज्दा सहू करना होगा और अगर दुआ–ए–कुनूत छोड़कर रुकूअ में चला गया फिर याद आया कि दुआ–ए–कुनूत नहीं पढ़ा है तो हुक्म यह है कि रुकूअ में दूआ–ए–कुनूत न पढ़े। न ही दोबारा क़याम की तरफ़ लौट कर दुआ–ए–कुनूत पढ़े। बल्कि उसकी तलाफ़ी आख़िर में सज्दा सहू कर ले। लेनिक अगर रुकूअ में याद आने के बाद क़याम की तरफ़ लौट गया और दुआए कुनूत पढ़ ली तब भी सही क़ौल के मुताबिक़ नमाज़ ख़राब नहीं होगी (अगरचे इसे ऐसा नहीं रकना चाहिये था) लेकिन सज्दा सहू इस सूरत में भी करना ज़रूरी होगा। (शामी)

नफ़िल नमाज़ों और ईद की नमाज़ों में सहू

अगर नफ़िल में भी वाजिब चीज़ों में से कोई चीज़ छूट जाए तो उसमें भी सज्दा सहू लाज़िम होगा। असलन यही हुक्म ईदैन (ईद की) और जुमा की नमाज़ का भी है। लेकिन मुताख़्ख़िरीन ने सही इसको क़रार दिया है कि अगर मजमा ज़्यादा हो और अगर इन्तिशार का अंदेशा हो तो सज्दा सहू तर्क किया जा सकता है। अगर मजमा ज़्यादा न हो तो सज्दा सहू ईदैन और जुमें में भी वाजिब रहेगा और मजमा अगर किसी आम नमाज़ में भी बहुत हो और इन्तिशार का अंदेशा हो तो इसमें भी सज्दा सहू छोड़ देने की इजाज़त है यह भी ख़्याल रहे कि ईदैन में छ तकबीरें भी वाजिबात में से हैं। लिहाज़ा मजमा ज़्यादा न हो तो भूले से इनके छोड़ने पर सज्दा सहू लाज़िम होगा। (शामी)

रकआत में शक का मसला

अगर किसी शख़्स को आम तौर से शक नहीं होता लेकिन कभी–कभी शक हो जाता है तो उसके लिये हुक्म यह है कि फिर से नमाज़ पढ़े और जिस नमाज़ में शक हो गया था उसको तोड़ दे। इसलिए कि हदीस शरीफ़ में आया है कि अगर किसी को पता न चला कि तीन रकआत पढ़ीं या चार रकआत पढ़ीं तो वह दोहरा ले। हमारे उलमा ने इस हदीस को ऐसे शख़्स पर महमूल किया है जिसको आम तौर पर शक नहीं होता।

और अगर किसी शख़्स को बार–बार शक हो जाता है तो बार–बार नमाज़ दोहराने से उसको परेशानी हो जाएगी इसलिए शरीअत ने आसानी के लिये उसके लिये यह रास्ता निकाला कि अगर इस तरह की सूरतेहाल है तो ग़ौर कर लिया जाए अगर किसी एक तरफ़ ग़लब–ए–ज़न हो मसलन शक हो गया कि तीन रकआत हुईं या चार हुई और ग़लब–ए–ज़न यह है कि चार हुई हैं तो चार ही मान लेगा और इस सूरत में सज्दा सहू की भी ज़रूरत नहीं होगी। इल्ला यह कि ग़लब–ए–ज़न हासिल करने में एक रुक्न की अदायगी के बक़द्र सोचता रह गया हो, तो सज्दा सहू लाज़िम हो जाएगा। (शामी)

इस तरह की सूरतेहाल के बारे में हदीस शरीफ़ में आया है कि जब तुममें से किसी को शक हो जाए तो सवाब की तहरीर करे यानि असलन कितनी रकआत हुई हैं इस पर ग़ौर करे।

और अगर किसी तरुफ ग़लब–ए–ज़न भी न रहा हो तो जितनी रकआत पढ़ने का यक़ीन हो तो उसी को अस्ल मान ले। मसलन शक है कि दो पढ़ी हैं या तीन तो दो मान ले। इसलिए कि दो रकआत का होना यक़ीनी है। फिर आगे हर रकआत में क़ादा कर ले और आख़िर मे सज्दा सहू कर ले।

इसी सूरत के बारे में हदीस में हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ़ (रज़ि0) से मरवी है फ़रमाते हैं कि मैंने नबी करीम (स0अ0) को फ़रमाते हुए सुना है कि जब तुममें से किसी से नमाज़ में भूल हो जाए और पता न चले कि एक रकआत पढ़ी है या दो रकआत तो वह एक पर बिना करे और अगर पता नचले कि दो पढ़ी है या तीन तो तीन पर बिना करे और सलाम फेरने से पहले दो सज्दे कर ले। (तिरमिज़ी, इब्ने माजा)

वित्र की रकआत में शक

अगर वित्र की नमाज़ पढ़ते हुए शक हो जाए कि दूसरी रकआत है या तीसरी रकआत है तो उसे चाहिये कि उसे दूसरी ही क़रार दे, जैसा कि ऊपर लिखा गया है बस फ़र्क़ यह है कि इस रकआत को दूसरी मानने के बावजूद इसमें दुआ–ए–कुनूत पढ़ेगा। फिर रकआत मुकम्मल करने के बाद क़ादा करके जब अगली रकआत के लिये खड़ा होगा तो उसमें भी दुआए कुनूत पढ़ेगा और आख़िर में सज्दा सहू करेगा। (शामी)

इमाम और मुक़्तदियों का इख़्तिलाफ़

सलाम फेरने के बाद इमाम और मुक़्तदियों में रकआत के बारे में इख़्तिलाफ़ हो यगा तो इसकी चार सूरते हैं:

1– इमाम जो कुछ कह रहा है अगर उसको इस पर मुकम्मल यक़ीन है तो उसको नमाज़ दोहराने की ज़रूरत नहीं है।

2– अगर कुछ मुक़्तदी इमाम के साथ हों और कुछ इख़्तिलाफ़ कर रहे हों तो इस सूरत में भी इमाम की राय पर अमल होगा। यानि दोहराने की ज़रूरत नही होगी।

3– अगर रकआत के सिलसिले में इमाम को खुद शक हो जाए और मुक्तदी कहें कि रकआत में कमी रह गयी है, तो मुक्तदियो की बात पर अमल किया जाएगा और नमाज़ दोहरायी जाएगी।

4– इमाम को यक़ीन है कि नमाज़ में कमी रह गयी तो दोहराना लाज़िम है लेकिन अगर किसी को यक़ीन है कि नमाज़ मुकम्मल हो गयी तो उसको हक़ है कि दोहरायी जाने वाली नमाज़ में शरीक न हो। (शामी)

सज्द–ए–तिलावत के एहकाम व मसाएल

कुरआन मजीद में चौदह जगहें ऐसी हैं जिनकी तिलावत करने सज्द–ए–तिलावत वाजिब होता है। आयत में उस जगह निशान लगा दिया जाता है जिसकी तिलावत से सज्दा वाजिब हो जाता है। इसलिए इन आयात का ज़िक्र हम छोड़कर सज्दा तिलावत के बक़िया एहकाम का ज़िक्र कर रहे हैं।

सज्दाए तिलावत कब वाजिब होता है:

तीन चीज़ों में से किसी के भी पेश आने से सज्दाए तिलावत वाजिब होता है।

1– खुद आयते सज्दा की तिलावत करे।

2– किसी से सज्दे की आयत सुने।

3– इमाम की इक़्तिदा कर रहा हो और वह सज्दा तिलावत करे चाहे मुक्तदी ने सज्दा तिलावत की आयत न सुनी हो या तिलवात के वक़्त मौजूद न रहा हो। (शामी)

सज्द–ए–तिलावत की शर्तें

यह उन्हीं लोगों पर वाजिब होता है जिन पर नमाज़ फ़र्ज़ होती है। यानि मुसलमान, आक़िल, बालिग़ और हैज़ व निफ़ास (माहवारी व प्रस्व रक्त) से पाक पर सज्दा–ए–तिलावत होता है। काफ़िर, मज़लूम, बच्चा, हैज़ व निफ़ास मुब्तिला औरत पर वाजिब नहीं होगा।

इसी तरह सज्द–ए–तिलावत के लिये भी वह तमाम काम शर्त है जों नमाज़ के लिये शर्त हैं। चुनान्चे सज्द–ए–तिलावत उसी वक़्त सही होगा जब सज्दा करने वाला पाक और बावुज़ू हो। जगह पाक हो। क़िब्ला रुख़ होकर किया जा रहा हो इत्यादि। अलबत्ता सज्द–ए–तिलावत के लिये तकबीर–ए–तहरीमा करना या हर आयत सज्दे के लिये अलग से तय करना शर्त

नहीं है। (शामी)

सज्द–ए–तिलावत तभी वाजिब होता है जब आयत–ए–सज्दा को मुकम्मल तौर से पढ़े अगर आयत से एक लफ़्ज भी बाक़ी रह गया तो सज्दा वाजिब नहीं होगा। बल्कि अगर बाद वाली आयत से भी आयते का सज्दा से ताल्लुक़ हो तो इस दोनों आयतों की तिलावत करने पर ही सज्दा वाजिब होगा। इसी तरह अगर पूरी आयत पढ़ ली और सज्दा वाला शब्द न पढ़ा तब भी सज्दा वाजिब नहीं होगा। (शामी)

लिखने से सज्दा वाजिब नहीं

अगर कोई शख़्स ज़बान से पढ़े तो आयत–ए–सज्दा को लिखने चाहे क़लम से या कम्प्यूटर से या आयत–ए–सज्दा के हुरूफ़ को अलग–अलग करके पढ़े तब भी सज्दा वाजिब नहीं होगा। (शामी)

सज्दा–ए–तिलावत का तरीक़ा

सज्दा–ए–तिलावत में एक सज्दा करना रूक्न औ फ़र्ज़ है। लेकिन बाज़ हालात में रुकूअ या इशारा भी उसकी जगह पर किया जा सकता है जैसे नमाज़ पढ़ने वाला आयत–ए–सज्दा पढ़ने के बाद रुकूअ कर ले वह सज्दा तिलावत के क़ायम मक़ाम हो जाता है और मरीज़ शख़्स सज्दे के बजाए सर झुका कर इशारा कर ले तो उससे भी सज्दा अदा हो जाता है और मसनून यह है कि सज्दा के लिये जाते वक़्त भी तकबीर कहे और उठते वक़्त भी तकबीर कहे और मुस्तहब यह है कि सज्दा करने स पहले खड़ा हो जाए और सज्दा मुकम्मल कर के भी खड़ा हो जाए लेकिन अगर बैठे–बैठे सज्दा किया और सज्दा करने के बाद भी बैठा रहा तो भी सज्दा हो जाएगा। इस सज्दे के लिये न तो तकबीरे तहरीमा है न तो तश्हद है, न सलाम फेरने की ज़रूरत है।(शामी)

सज्दा तिलावत अगर फ़र्ज़ नमाज़ में पढ़ने की नौबत आये तो सज्दा में नमाज़ वाली तस्बीह यानि सुब्हान रब्बिर आला पढ़ना चाहिए लेकिन अगर सज्दे की नौबत नफ़िल नमाज़ में आ जाए या सज्द–ए–तिलावत नमाज़ से बाहर अदा कर रहा हो तो तस्बीह के साथ महशूरा दुआएं भी पढ़ सकता है। (शामी)

इस्लाम में दुनिया छोड़ने का आदेश नहीं

अल्लामा इब्ने तैमिया

दुनिया में जो सबसे बड़ा झूठ बोला गया वह यह है कि इस्लाम दुनिया को छोड़ देने का पक्षधर है हालांकि इस्लामी शिक्षाओं का उद्देश्य केवल यही है कि दुनियाप्राप्ति को लक्ष्य न बनाया जाए बल्कि उसे साधन घोषित कर दिया जाए एक बड़े और अन्तिम उद्देश्य के लिये दुनिया के जीवन की राह वह कठिन राह है जिस पर चलकर ही आख़िरी मंज़िल तक पहुंचना संभव है। दुनिया खेती है और आख़िरत में मिलने वाला बदला उसका हासिल है। इसलिए मोमिन को सामने सूरत नहीं हक़ीक़त को रखना चाहिये। रूमी कहते हैं कि दुनिया ख़ुदा से ग़ाफ़िल होना है, पैसा कमाना और बीवी बच्चों से संबंध नहीं.....दुनिया यदि अल्लाह की राह में बाधा नहीं डालती तो वह दीन है। रसूलुल्लाह स0अ0 ने फ़रमाया कि जो बीवी तुम्हारे तक़्वे के लिये मददगार हो वह दुनिया से नहीं। आख़िरी बात यह कि इस्लाम की शिक्षा दुनिया को छोड़ देने की नहीं है बल्कि छोड़ देने के छोड़ देने की है।

सही हदीसों में हज़रत अनस रज़ि0 की रिवायत है 3 आदमियों ने रसूलुल्लाह स0अ0 की बीवियों से उनकी इबादत का हाल सुनकर यह अहद किया कि उनमें से एक हमेशा रोज़े रखेगा, दूसरे ने यह कहा मैं नमाज़ ही पढ़ता रहूंगा, तीसरे ने कहा कि मैं कभी निकाह नहीं करूंगा। रसूलुल्लाह स0अ0 को मालूम हुआ तो आप स0अ0 ने उनसे कहा कि क्या तुमने ऐसा–ऐसा कहा है?ख़ुदा की क़सम मैं तुमसे ज़्यादा तक़्वे वाला हूं और ख़ुदा से डरता हूं। लेकिन रोज़े के साथ इफ़्तार भी करता हूं, नमाज़ों के साथ आराम भी करता हूं और निकाह–ब्याह भी। जो मेरी सुन्नत छोड़ता है, वह मुझमें से नहीं। (मुस्लिम) ऐसे ही कुछ लोगों ने रसूलुल्लाह स0अ0 की बीवियों से रसूलुल्लाह स0अ0 के मुबारक अहवाल सुनकर अहद किया कि गोश्त नहीं खायेंगे, कुछ लोगों ने कहा, बिस्तर पर नहीं सोयेंगे, आप स0अ0 को पता चला तो आप स0अ0 ने वही जुम्ले कहे।

ईदुल अज़हा की फ़ज़ीलत और कुर्बानी का हुक्म और मसले

दुनिया की हर क़ौम (समुदाय) और हर मज़हब (धर्म) का साल में कोई न कोई त्यौहार ज़रूर होता है। इनसानी स्वभाव इसका मांग भी करता है कि साल में खुशियों को ज़ाहिर करने का भी कोई दिन होना चाहिये। इसीलिये दीन–ए–फ़ितरत यानि इस्लाम में भी इनसान के स्वभाव का मान रखा गया है और साल में दो दिन खुशियां मनाने के भी तय किये गये हैं। अबूदाऊद में हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) मदीना तशरीफ़ लाये (पधारे) तो मदीना वालों को देखा कि उन्होंने साल में खुशियां मनाने के दो दिन तय कर रखे हैं, रसूलुल्लाह (स0अ0) ने पूछाः

"ये कैसे दो दिन हैं?", सहाबा किराम (रज़ि0) ने उत्तर दियाः

"जाहिलियत के ज़माने में हम उन दोनो में खेल–कूद किया करते थे।"

रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः "अल्लाह ने उन दिनों के बदले में उनसे बेहतर दो दिन तुमको दिये हैं, "ईदुल अज़हा" और "ईदुल फ़ित्र"।

इनमें से ईदुलफ़ित्र रमज़ानुल मुबारक के बाद मनायी जाती है। जब अल्लाह के हुक्म से अल्लाह के बन्दे पूरे एक महीने तक समय विशेष में खाने–पीने और नफ़्सानी ख़्वाहिश (शारीरिक इच्छाओं) से परहेज़ करते हैं। दूसरी ईद यानि ईदुल अज़हा ज़िलहिज्जा (इस्लामी कैलेन्डर का अन्तिम माह) की दस तारीख़ को मनायी जाती है। यही हज का समय भी होता है। हज और कुर्बानी के लगभग मनासिक (कार्य) हज़रत इब्राहीम (अलै0), हज़रत हाजरा और हज़रत इस्माईल (अलै0) की अलग–अलग कुर्बानियों और कामों की याद में मनाये जाते हैं। लेकिन दोनों ईदों में समान चीज़ ये है कि इसमे दूसरी क़ौमों के त्योहारों की तरह कोई शोर व गुल बिल्कुल नहीं है। दोनों में जो काम बताये गये हैं, उनमें इस्लाम की सादगी की झलक मिलती है। इन खुशी के मौक़ो पर भी बन्दे अल्लाह की बड़ाई का नारा लगाते हुए बस्ती के बाहर ईदगाह या किसी मस्जिद में जाते हैं और अल्लाह के सामने दो रकआत नमाज़ अदा करके अपनी बन्दगी प्रकट करते हैं। मानों ईद की नमाज़ मुसलमानों की खुशी मनाने का नमूना हैं। मुसलमानों से मांग यही है कि खुश के मौक़े पर भी अल्लाह के सामने सर झुका दें और उसके हुक्मों के सामने भी सर झुका दें। ईदुल अज़हा के मौक़े पर ईद की नमाज़ के अलावा ज़िल्हिज्जा के शुरू के दस दिन की अहमियत व फ़ज़ीलत (महत्व व श्रेष्ठता) भी अलग से बयान की गयी हैं। इसीलिये बुख़ारी में हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमायाः

"इन दस दिनों से बेहतर दूसरे कोई भी ऐसे दस दिन नहीं है जिनमें अल्लाह को नेक अमल ज़्यादा महबूब (प्रिय) हों, सहाबा ने पूछाः अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं? आप (स0अ0) ने फ़रमाया, अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं सिवाये उस शख़्स के जो अपनी जान व माल के साथ निकला हो और उसमें से कोई चीज़ भी वापस न लाया हो।"

और तिरमिज़ी और इब्ने माजा की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने फ़रमायाः "अल्लाह तआला की इबादत ज़िलहिज्जा के दस दिनों से बेहतर और कोई ज़माना नहीं है। उनमें एक दिन का रोज़ा एक साल के रोज़ों के बराबर और एक रात में इबादत करना शब क़दर में इबादत करने के बराबर है।"

कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने सूरह फ़ज्र में जिन दस रातों की क़सम खाई है मुफ़स्सिरीन (कुरआन की व्याख्या करने वाले) का कथन है कि इन दस रातों से ज़िल्हिज्जा के पहले अशरे (प्रथम दस दिन) की रातें ही मुराद हैं। इनमें ख़ास तौर पर ज़िल्हिज्जा की 9/तारीख़ की बड़ी फ़ज़ीलत बतायी गयी है। मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू क़तादा (रज़ि0) की लम्बी हदीस में है किः

"अरफ़ा (9/ज़िलहिज्जा) का रोज़ा रखने पर मेरा अल्लाह पर गुमान यह है कि उसे पिछले एक साल और आगे के एक साल के गुनाहों का कफ़्फ़ारा बना देगा।" लेकिन अरफ़ा के रोज़ों की ये फ़ज़ीलत ग़ैर हाजियों के लिये है। हाजियों को इस रोज़े से मना कर दिया गया है ताकि अरफ़ात के मैदान के काम अच्छी तरह अन्जाम दे सकें। इसीलिये अबूदाऊद में अबूहुरैरा (रज़ि0) की रिवायत आयी है कि आंहज़रत (स0अ0) मक़ामे अरफ़ात में अरफ़ा का रोज़ा रखने से मना कर दिया है।

कुर्बानी

ज़िल्हिज्जा के महीने में सबसे अहम इबादत कुर्बानी है। इसीलिये हज़रत आयशा (रज़ि0) फ़रमाती हैंः नबी करीम

(स0अ0) ने इरशाद फ़रमाया:

"आदम की औलाद नहर के दिन (10/ज़िलहिज्जा) जो अमल करती है उनमें अल्लाह को सबसे ज़्यादा महबूब ख़ून बहाना (कुर्बानी करना) है। वो जानवर क़यामत के दिन अपनी सींगों, बाल और खुरों के साथ आयेगा और ख़ून ज़मीन पर गिरने से पहले ही अल्लाह के यहां मक़बूलियत (स्वीकृति) हासिल कर लेता है। लिहाज़ा उसको खुशदिली (प्रसन्नचित्त) से किया करो।" (तिरमिज़ी, इब्ने माजा)

साहिबे निसाब पर कुर्बानी करना अहनाफ़ (हनफ़ी फ़िक़) के निकट वाजिब है। इसलिये कि हदीस में नबी करीम (स0अ0) का इरशाद नक़ल किया गया है कि:

"जिसके पास वुसअत (क्षमता) हो और कुर्बानी न करे वो हमारी ईदगाह के पास न आये।"

कुर्बानी का निसाब

कुर्बानी हर अक़्ल वाले बालिग़, मुक़ीम (स्थानीय) मुसलमान पर वाजिब होती है। शर्त ये है कि वो साढ़े बावन तोला (612 ग्राम) चांदी या उसकी क़ीमत का मालिक हो और ये कि उसकी ज़रूरी ज़रूरतों से ज़्यादा हो या व्यापारिक माल की शक्ल में हो या आवश्यकता से अधिक घरेलू सामान या रहने के मकान से ज़्यादा मकान हों। कुर्बानी और ज़कात के निसाब में एक फ़र्क़ ये भी है कि ज़कात में साल गुज़रने की शर्त होती है लेकिन कुर्बानी में साल गुज़रने की शर्त नहीं है। इस ज़माने में निसाब (निश्चित मात्रा) का मालिक है तो कुर्बानी वाजिब (अनिवार्य) होगी।

कुर्बानी के दिन

कुर्बानी के तीन दिन हैं। 10, 11 और 12 ज़िलहिज्जा। इनमें से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) पहले दिल कुर्बानी करना है। यद्यपि जहां ईद की नमाज़ जायज़ होती है वहां ईद की नमाज़ से पहले कुर्बानी करना जायज़ नहीं है। इसलिये बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत जन्दब की रिवायत है फ़रमाते हैं:

"नबी करीम (स0अ0) ने नहर के दिन (10/ज़िलहिज्जा) नमाज़ पढ़ाई। फिर ख़ुत्बा दिया फिर कुर्बानी की और इरशाद फ़रमाया: जिसने नमाज़ पढ़ने से पहले कुर्बानी की थी वो इसकी जगह दूसरी कुर्बानी करे और जिसने कुर्बानी नहीं की थी वो अल्लाह का नाम लेकर कुर्बानी करे।"

कुर्बानी के जानवर

कुर्बानी सिर्फ़ ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, दुम्बा, भेड़ (नर–मादा दोनों) की जायज़ (वैद्य) है। बक़िया जानवरों की जायज़ नहीं है। इसमें भी हदीस शरीफ़ में ये शर्त लगायी गयी कि मुसन्ना (निश्चित उम्र को पहुंच चुका हुआ) हो और किसी भी प्रकार के ऐब या कमी से ख़ाली हो। इसीलिये मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत जाबिर (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमाया: "सिर्फ़ मुसन्ना की कुर्बानी किया करो यहाँ तक कि तुम पर तंगी हो तो भेड़, दुम्बा का छः माह का या उससे ज़्यादा का जानवर ज़िबह कर लिया करो।"

इन जानवरों में से हर एक का मुसन्ना अलग–अलग होता है। इसीलिये ऊंट का मुसन्ना वो है जो पांच साल पूरे कर चुका हो। गाय और भैंस का मुसन्ना वो है जो दो साल पूरे कर चुका हो और बकरी और भेड़ और दुम्बा का मुसन्ना वो है जो एक साल पूरे कर चुका हो। लेकिन जैसा कि हदीस में गुज़रा है दुम्बा अगर छः माह या उससे ज़्यादा का हो तो उसकी कुर्बानी की जा सकती है।

भेड़, बकरी की कुर्बानी सिर्फ़ एक व्यक्ति की तरफ़ से हो सकती है जबकि ऊंट व गाय–भैंस इत्यादि में सात लोग शामिल हो सकते हैं लेकिन शर्त ये है कि किसी का हिस्सा सातवें हिस्से से कम न हो और सबकी नियत कुरबत (निकटता) की हो।

ऐबों का वर्णन

रसूलुल्लाह (स0अ0) ऐब (कमी) से पाक और बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी फ़रमाया करते थे और उम्मत को भी ऐबों से पाक बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी के लिये कहा करते थे। हज़रत अली (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने हमको हुक्म दिया कि जानवर की आंख, कान का जायज़ा लें और कान कटे–फटे और कान मे सूराख़ वाले जानवरों की कुर्बानी न किया करें। (अबूदाऊद, नसाई, इब्ने माजा)

अबूदाऊद, नसई और इब्ने माजा ही में हज़रत बराअ बिन आज़िब (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) से सवाल किया गया: "किन जानवरों की कुर्बानी से बचा जाये? आप (स0अ0) ने हाथ के इशारे से फ़रमाया: चार से! वो लंगड़ा जानवर जिसका लंगड़ापन ज़ाहिर हो। वो काना जिसका कानापन ज़ाहिर हो। ऐसा बीमार जानवर जिसकी बीमारी ज़ाहिर हो और वो लाग़र ज़िसकी हड्डियों में गूदा ही न हो।

इन जैसी हदीसों से फ़ुक़्हा (धर्मगुरूओं) ने ऐबों (कमियों) के बारे में निम्नलिखित वर्णन किया है:

1– अंधे, काने और लंगड़े जानवर की कुर्बानी जायज़ नहीं है। उसी तरह उस बीमार और लाग़र (अत्यधिक कमज़ोर) जानवर की कुर्बानी भी ठीक नहीं जो अपने पैरों द्वारा कुर्बानी की जगह तक न जा पाये।

2– जिस जानवर की दुम तिहाई से ज़्यादा कटी हो उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है।

3– जिस जानवर के दांत बिल्कुल न हों या अक्सर न हों उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है। यही हुक्म उस जानवर का भी है जिसके कान पैदाइशी तौर पर न हों।

4– जिस जानवर की सींग पैदाइशी तौर पर न हों या बीच से टूट गये हों उसकी कुर्बानी जायज़ है लेकिन अगर सींग जड़ से उख़ड गयी हो तो असर दिमाग़ तक पहुंच जाता हैं।

5– ख़स्सी (बधिया) की कुर्बानी न केवल जायज़ बल्कि अफ़ज़ल और सुन्नत है। रसूलुल्लाह (स0अ0) से ख़स्सी की कुर्बानी करना साबित है।

कुर्बानी का तरीक़ा

अपनी कुर्बानी अपने हाथ से करना अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। लेकिन अगर कुर्बानी करना नहीं जानता या किसी और वजह से खुद भी नहीं करना चाहता तो कम से कम ज़िबह के वक़्त खड़ा रहने का सवाब ज़रूर हासिल करे, बहुत से लोग इस वजह से मौजूद भी नहीं रहना चाहते, ये रूझान सही नहीं है।

कुर्बानी के वक़्त जो दुआंए मनकूल (रसूलुल्लाह स0अ0 से नक़ल की गयी हैं) हैं उनका पढ़ना अफ़ज़ल है लेकिन ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ ज़िबह के वक़्त "बिस्मिलिल्लाह अल्लाहु अकबर" कहना ज़रूरी है। कुर्बानी करते वक़्त नीचे दिये गये कामों का ख़्याल रखना चाहिये:

1– ज़िबह करने से पहले जानवरों को चारा खिला दिया जाये। भूखा–प्यासा रखना मकरूह है।

2– ज़िबह की जगह सहूलत से ले जाये। घसीट कर ले जाना मकरूह है।

3– क़िब्ला (काबे की ओर) रुख़ बायें करवट लिटांए। उससे जान आसानी से निकलती है।

4– छुरी तेज़ रखें। कुन्द छुरी से ज़िबह करना मकरूह है।

5– छुरी जानवर को लिटाने से पहले तेज़ कर ले और उससे छिपाकर तेज़ करें।

6– एक जानवर के सामने दूसरे जानवर को ज़िबह न करें।

7– ज़िबह के बाद जानवर के ठन्डे होने से पहले न सर अलग करे न खाल निकालें।

8– सुन्नत ये है कि जब जानवर ज़िबह करने के लिये क़िब्ला की तरफ़ लिटांए तो ये दुआ पढ़े:

﴿إِنِّي وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ حَنِيفًا وَمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِينَ ۞ قُلْ إِنَّ صَلَاتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلَّهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ لَا شَرِيكَ لَهُ وَبِذَلِكَ أُمِرْتُ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُسْلِمِينَ﴾ اللّٰهم منك ولك "بسم الله الله اكبر

और ज़िबह करने के बाद ये दुआ पढ़े:

"اَللّٰهُمَّ تَقَبَّلْهُ مِنِّي كَمَا تَقَبَّلْتَ مِنْ حَبِيبِكَ مُحَمَّدٍ وَخَلِيلِكَ إِبْرَاهِيمَ عَلَيْهِمَا الصَّلَاةِ وَالسَّلَامِ"

कुर्बानी का गोश्त

अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) यह है कि कुर्बानी के गोश्त के तीन हिस्से कर लें। एक हिस्सा अज़ीज़ व अक़ारिब (रिश्तेदारों व मिलने वाला) के लिये, एक फ़क़ीरों के लिये और एक अपने लिये। लेकिन ये सिर्फ़ अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। स्वयं पूरा गोश्त भी इस्तेमाल कर सकता है और पूरा हदिया (भेंट) और सदक़े (दान) में भी दे सकता है। कुर्बानी का गोश्त ग़ैर मुस्लिमों को भी दिया जा सकता है। खाल अपने इस्तेमाल में ले ये ग़रीबों को दे दे। लेकिन कुर्बानी का गोश्त या खाल अगर बेचे तो उस रुपये को ग़रीबों पर सदक़ा करना ज़रूरी हो जाता है। वल्लाहु आलम बिस्सवाब

भैंस की कुर्बानी का हुक्म

शरीअत ने कुर्बानी के जानवर तय कर दिये हैं और ये जानवर तीन हैं:

1: ऊंट

2: गाय

3: बकरी

उपरोक्त सभी जानवर अपनी सारी ज़िन्स (क़िस्म अथवा प्रकार) सहित।

इसीलिये हदीसों में इन्हीं तीन जानवरों का ज़िक्र है।

1– हज़रत उक्बा बिन आमिर (रज़ि0) रिवायत करते हैं कि नबी करीम (स0अ0) ने उनको भेड़ बकरियाँ दीं ताकि कुर्बानी के लिये सहाबा किराम (रज़ि0) के बीच बाँट दें। (बुख़ारी: 5555)

2– हज़रत जाबिर (रज़ि0) रिवायत करते हैं कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमाया: "गाय सात लोगों की तरफ़ से और ऊंट सात लोगों की तरफ़ से काफ़ी है।"

(मुस्लिम: 2808)

अस्ल बात ये है कि कुरआन मजीद में कुर्बानी के जानवरों की तरफ़ इशारा करते हुए इन्हीं जानवरों का ज़िक्र

है। इसीलिये सूरह हज में है:

"और जितने अहले शरीअत (जिन समुदायों पर अल्लाह की शरीअत उतरी) गुज़रे हैं उनमें से हमने हर उम्मत के लिये इस ग़रज़ (उद्देश्य) से मुक़र्रर (तय) किया था वो इन (विशेष) चौपायों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उनको अता फ़रमाये थे।" (सूरह हज: 34)

फिर उन ख़ास जानवरों की दूसरी जगह व्याख्या करते हुए कहा:

"और ये मवेशी आठ नर व मादा (पैदा किये) यानि भेड़ व दुम्बा में दो क़िस्म (प्रकार) नर व मादा और बकरी में दो क़िस्म (प्रकार) नर व मादा (आगे है) और ऊँट में दो क़िस्म (प्रकार) और गाय (में दो क़िस्म)"

(सूरह अलइनआम: 133–135)

इसीलिये उलमा (धार्मिक विद्वान) सहमत हैं कि केवल उन्हीं जानवरों की कुर्बानी हो सकती है किसी और जानवर की नहीं हो सकती है। बदाए के लेखक फ़रमाते हैं: "रही उसकी जिन्स (क़िस्म) तो वो यह है कि जानवर तीन क़िस्मों बकरी, ऊँट या गाय में से हो और हर जिन्स में उसकी नऊ (प्रकार) और उसका नर और मादा और ख़स्सी या सांड सब दाख़िल हैं। इसलिये कि जिन्स (क़िस्म) का उन सब पर इतलाक़ (लागू) होता है।" (बदाए सनाए: 205/4)

और अल्लामा इब्ने रुश्द (रह0) फ़रमाते हैं:

"सब इस पर सहमत हैं कि वर्णित जानवरों के अलावा से कुर्बानी जायज़ नहीं है।"(बदायातुल मुजतहिद: 430/1)

फिर उलमा का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि ऊंट से मुराद उसकी हर क़िस्म है चाहे वो बख़्ती ऊँट हो या एराबी। बकरी में भी उसकी सभी क़िस्म भेड़, दुम्बा, शामिल हैं। गाय की भी सभी क़िस्में उसमें शामिल हैं। इसलिये कि हदीसों में उनके जिन्सी नाम लिये गये हैं और जिन्स हर क़िस्म पर लागू होती है।

फिर जमहूर (उलमा की एक बड़ी संख्यां जो आपस में सहमत हों) के निकट भैंस भी गाय की ही एक क़िस्म हैं लिहाज़ा उसकी कुर्बानी भी सही है।

साहबे बदाए (रह0) फ़रमाते हैं:

"बकरी ग़नम (भेड़) की एक क़िस्म है और भैंस गाय की एक क़िस्म है। इस दलील से कि इसको बाब–ए–ज़कात में ग़नम और गाय में मिला दिया जाता है।"

(बदाए सनाए: 205/4)

अल्लामा नववी (रह0) फ़रमाते हैं:

"अज़हिया में शरब जवाज़ यह है कि जानवर अनआम में से हो यानि ऊँट, गाय और बकरी इसमें ऊंट की सभी क़िस्में बख़ाती हैं और अराब और गाय की सभी क़िस्में यानि भैंस और ख़ालिस अरबी दरबानी और ग़नम की तमाम क़िस्में भेड़–बकरी और सबकी नर व मादा बराबर हैं, (आगे है) इसमें से किसी चीज़ में हमारे यहां कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है।" (अलमजमूअ: 222/8)

मालूम हुआ कि उलमा भी इस पर क़रीब–क़रीब एकमत हैं कि भैंस गाय ही का एक प्रकार है। किसी आयत या हदीस में यह नहीं आया है कि भैस गाय की जिन्स (क़िस्म) से है। कुरआन और हदीस में सिर्फ़ ये आया है कि गाय की जिन्स भी कुर्बानी के जानवरों में से है। फिर जमहूर इस पर मुत्तफ़िक़ हैं कि भैंस गाय की जिन्स से है। इसके लिये कुछ हवाले दिये जा रहे हैं।

1– अल्लामा इब्ने तैमिया (रह0) फ़रमाते हैं:

"भैंस गाय के मर्तबे (स्थान) में से है। इब्नुल मुन्ज़िर ने उससे संबंधित सहमति नक़ल किया है। (फ़तावा इब्ने तैमिया: 37/25)

2– अल्लामा इब्ने क़द्दामा (रह0) फ़रमाते हैं:

"भैस गायों के हुक्म में होंगी। इसमें हमें किसी के इख़्तिलाफ़ (मतभेद) की जानकारी नहीं।"

और इब्नुल मुन्ज़िर (रह0) फ़रमाते हैं: "अहले क़लम में से जिसकी बातें याद रखी जाती हैं उनमें से हर एक का इस पर इत्तिफ़ाक़ (सहमति) है और भैंस गाय की क़िस्म में से हैं। जैसा कि बख़ाती ऊंट की किस्म में से है।

(अलमुग्नी : 470/2)

3– लुग़ात (शब्दकोष) में भैंस को गाय की जिन्स क़रार दिया गया है।

उलमा (धार्मिक विद्वान) के इत्तिफ़ाक (सहमति) और जानवरों के माहिरों के कथनों को देखकर जमहूर भैंस की कुर्बानी के जवाज़ (वैद्यता) के क़ायल (समर्थक) हैं। ये अलग बात है कि जिन इस्लामी देशों में सहूलत के साथ गाय की कुर्बानी हो सकती है वहां एहतियातन गाय ही की कुर्बानी होती है। भारत की विशेष स्थिति के कारण गाय की कुर्बानी मुश्किल काम है अतः भैंस की कुर्बानी से मुताल्लिक़ जमहूर के क़ौल से फ़ायदा उठाया जा रहा है। किसी को संतुष्टि न हो तो वह उसकी कुर्बानी न करे लेकिन जमहूर के कथन के बावजूद इस विषय पर बहस करना मैं समझता हूं कि अक़्लमन्दी की बात नहीं कही जा सकती है।

मुहब्बत और नफ़रत का स्तर

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हज़रत अबूअमामा (रज़ि0) से रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने इरशाद फ़रमायाः

"जिसने ख़ुदा के लिये मुहब्बत की और ख़ुदा के लिये गुस्सा किया, और ख़ुदा के लिये दिया और ख़ुदा के लिये रोका तो उसने अपना ईमान मुकम्मल कर लिया।" (सुनन अबी दाऊदः 4683)

फ़ायदाः दीन–ए–इस्लाम अपने मानने वालों से इस बात की मांग करता है कि उनकी हर काम ख़ुदा के लिये हो। उनके हर काम में अल्लाह की रज़ा का मक़सद छिपा हुआ हो। उनकी नियत का सारा केन्द्र ख़ुदा से निकटका हो और यह चीज़ अपने अन्दर ऐसी मज़बूत हो कि उसके सामने रिश्तेदारियां, संबंध, मामले, ताल्लुक़ात भी द्वितीय स्थान रखते हों। बल्कि अगर उसके निबाहने में अल्लाह और उसके रसूल (स0अ0) की हक़तलफ़ी (अधिकार हनन) की संभावना हो तो क़ुरान का तक़ाज़ा यह है कि इन्सान अव्वलियत ख़ुदा और उसके रसूल को दे।

अल्लाह तआला का इरशाद हैः

"जो लोग ख़ुदा पर और क़यामत के दिन पर ईमान रखते हैं तुम उनको ख़ुदा और रसूल के दुश्मनों से दोस्ती करते हुए न देखोगे, चाहे वे उनक बाप, बेटे या भाई या ख़ानदान ही के लोग हों।" (सूरह मुजादिलाः 22)

इसीलिए क़ुरआन मजीद में दोस्त उन्हें बताया गया है जिनके नज़दीक दुनिया व दुनिया की तमाम चीज़ों से ज़्यादा अहम अल्लाह के क़ानूनों पर बिन्दुमात्र का भी बदलाव किये बिना अमल हो और ऐसे लोगों से निकटता बढ़ाने पर भी बाज़ जगह उभारा गया है, एक जगह इरशाद हैः

"तुम्हारे दोस्त तो ख़ुदा और उसके पैग़म्बर और मोमिन लोग ही हैं जो नमाज़ पढ़ते हैं और ज़कात देते हैं और (ख़ुदा के आगे) झुकते हैं।" (सूरह माइदाः 55)

मज़कूरा हदीस में मुहब्बत व नफ़रत का पैमाना बयान हुआ है और उसको ईमान की पूर्ति में शामिल किया गया है कि इन्सान अपने हर काम को ख़ालिस अल्लाह के लिये करे। किसी से मुहब्बत हो तो अल्लाह के लिये हो। किसी से नफ़रत हो तो अल्लाह के लिये हो। किसी को कुछ देना–दिलाना हो तो अल्लाह के लिये हो। किसी को न देना हो, किसी चीज़ से रोकना हो तो अल्लाह के लिये हो। अर्थात यह है कि अगर इन्सान का ऐसा मिज़ाज बन जाए तो वह असाधारण उन्नति की प्राप्ति कर सकता है। क्योंकि ऐसी स्थिति में फिर उसका हर काम को इबादत का नाम दिया जायेगा। वह अपने हर काम में चाक़ व चौबन्द नज़र आयेगा। दुनिया के रूठने की उसको कोई परवाह न होगी। उसके मद्देनज़र सिर्फ़ और सिर्फ़ ख़ुदा की रज़ा होगी। उससे चाहे कोई नाराज़ हो या ख़ुश हो। उसकी बात किसी के पक्ष में हो या विपक्ष में, वह उन तमाम गहराइयों में बिल्कुल भी नहीं जाएगा।

बात यह है कि आज इन्सान की सोच ही बदल गयी है। ख़ास दीनी काम के अलावा किसी का शायद ही इस काम की तरफ़ ध्यान जाता हो कि हर काम में अल्लाह तआला का ध्यान होना चाहिये। हर काम उसी के वास्ते से होना चाहिये। यही वजह है कि इन्सान आज अल्लाह तआला की ग़ुलामी से ज़्यादा अपनी नफ़्स की ग़ुलामी में मस्त है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो नफ़्स की रज़ा को न देखते हों, बल्कि अक्सरियत उन्हीं लोगों की नज़र आती है जो हर काम में अपने नफ़्स के आख़िरी हद तक ग़ुलाम हैं। मुस्लिम समाज में आयोजनों में फ़िज़ूलख़र्ची, जनसाधारण में अश्लीलता, हराम माल की अधिकता, बन्दों के अधिकारों की अदायगी में ग़फ़लत और सुस्ती, वास्तव में यह सब चीज़ें नफ़्स (मन) की ग़ुलामी का प्रदर्शन हैं और इन्सान अपने नफ़्स को मोटा करने में इस हद तक गिर जाता है कि उसको किसी की ख़ुशी नज़र नहीं आती।

नफ़्स की इस ग़ुलामी से आज़ादी का आसान और एकमात्र हल यही है कि हर काम में अल्लाह की रज़ा का जज़्बा काम करता रहे। उसका बुनियादी फ़ायदा यह होगा कि इन्सान अल्लाह के दरबार में भी क़रीबी बन्दों में गिना जाएगा और दुनिया में भी उसको हर तरह का ख़ैर हासिल होगा। अगर किसी चीज़ के पाने की नियत हो और वह न मिल सके तो दिल न टूटेगा, बल्कि सब्र से काम लेगा और मिल जाए तो शुक्र के भाव में बढ़ोत्तरी होगी। इस प्रकार उसका जीवन एक आदर्श बन जाएगा।

कुर्बानी की वास्तविकता

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

ईदुल अज़्हा का संबंध इस्लामी इतिहास के एक बहुत ही रोशन अध्याय से है। यद्यपि जन साधारण के बीच यह केवल इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की सुन्नत के तौर पर दी जाने वाली जानवरों की कुर्बानी की हैसियत से ज़िन्दा है। लेकिन वास्तव में यह हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) के उस श्रेष्ठ नमूने की पैरवी व उस नमूने को पुनः जीवित करना है। इस्लाम की वास्तविकता और अल्लाह की शरीअत की ताबीर व तस्वीर है। अल्लाह तआला को इस्लाम की जिस वास्तविकता से दुनियावालों को परिचित कराना था उनके अनुसार यदि कोई जीवित श्रेष्ठ नमूना हो सकता था तो सर्वप्रथम वह हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) का जीवन था। क्योंकि हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ही इस्लाम की ओर बुलाने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति थे। उनका अस्तित्व स्वयं में इस्लाम था। उनका हर कार्य वास्तव में इस्लाम का प्रदर्शन था। जो पैरोवान इस्लाम के लिये श्रेष्ठ नमूना हो सकता था। यही कारण है कि अल्लाह तआला ने उनके जीवन के सभी काम सदा के लिये सफ़ह गीती में सुरक्षित कर दिये और उनके त्याग के सभी पहलुओं को स्थायी रुप से बाक़ी रखा गया।

ज़िलहिज्जा की नवीं तारीख़ से ही दुनिया के सामने इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) के नमूनों के चिरस्थायी जीवन का अजीब व ग़रीब दृश्य होता है। इतिहास हज़ारों साल का सफ़र तय करने के बाद हर साल अपने आप को दोहराती है, ताकि इस्लाम के सर्वप्रथम निवेदक का जीवन एक बार फिर अपनी पूरी विशेषताओं व गुणों के साथ मुर्दा में जान डाल दे और रहरवान हक़ीक़त के सामने सब्र व धैर्य और त्याग व कुर्बानी का पाठ प्रस्तुत कर दे। हज के मैदान में एक तरह के लिबास में, एक ही दिशा के लिये, दौड़ने वालों की ज़बानों से "लबबैक अल्लाहुम्मा लबबैक" की आवाज़ें निकलती हैं तो उनकी हर सदा हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की सदा होती है, जिन्होंने हज़ारों बरस पहले अपने "ख़लील" की "या अब्दी" की सदा के जवाब में आशिकाना अंदाज़ में "लबबैक व सादयक" का नारा लगाया था।

हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) का पूरा जीवन त्याग व कुर्बानी का श्रेष्ठ नमूना था। उन्होंने अल्लाह की रज़ा के आगे अपने वुजूद को मिटा दिया था। उनके जीवन का हर क्षण अल्लाह तआला की रज़ा का तलबगार था। कभी उन्हीं इच्छा अल्लाह तआला की इच्छा के विपरीत न हुई। अल्लाह की मर्ज़ी के सामने न बीवी की चाहत आयी, न औलाद की मुहब्बत उनके पैरों की ज़ंजीर बन सकी। बिना किसी इनकार के उन्होंने अपने रब के सभी आदेशों को माना। अपना जीवन उसकी इच्छानुसार गुज़ारा और रहती दुनिया तक के लिये त्याग व कुर्बानी और सम्पूर्ण इस्लाम का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत कर दिया।

हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) अपनी कुर्बानियों में अकेले थे लेकिन अपने वुजूद के अन्दर पूरा एक समुदाय रखते थे। उनका हर तरीक़ा इस्लाम था। इस्लाम की वास्तविकता में उनका वुजूद इस तरह फ़ना हो गया था कि जब उन्होंने इस दुनिया में आंख खोली तो अपने चारों ओर मूर्ति पूजा के दृश्य देखे। शहरों और बाज़ारों में लोगों को बुतों के आगे माथा टेकते देखा। स्वयं अपने पिता को मूर्तियां बनाते और उनकी पूजा करते हुए पाया। निसंदेह यह इस्लाम की वास्तविकता का ही करिश्मा था कि जिसने उनके दिल में मूर्ति पूजा व उसके सभी दृश्यों से नफ़रत व घिन पैदा कर दी थी और उस अनदेखे महबूब के इश्क़ की आग लगा दी, जिसकी ज़द में मासवा ख़ाकसतर हो गया था। यही कारण था कि जब उनके ख़ानदान वाले पत्थर तराश–तराश कर रंग–बिरंगी सूरतें बनाते थे तो हक़ीक़त को बयान करने वाली उनकी ज़बान से यह स्वीकारोक्ति होना स्वाभाविक था कि तुम जिस मूर्तिपूजा में पड़े हो, मुझे उससे कोई

लेना–देना नहीं है। यद्यपि मुझे उस अनदेखी ज़ात से सरोकार है जिसने मुझे बनाया और जिसने पूरी सृष्टि का निर्माण किया। जिसके क़ब्ज़े में दुनिया की हर चीज़ है और जो हमेशा–हमेश से है और सदा रहेगा।

एकेश्वरवाद की घोषणा के परिणामस्वरूप उनको कठिनाइयां उठानी पड़ीं। दहकती हुई आग में उनको ज़िन्दा डाला गया, मगर जो अल्लाह का हो जाता है अल्लाह भी उसी का हो जाता है। उन्होंने स्वयं को अल्लाह के सुपुर्द कर दिया था। अतः आसमान की ऊचांइयों को छूते हुए शोलों के सामने भी वे न डिगे, न घबराए, न किसी सोच में पड़े, दिल के अन्दर केवल एक ख़ुदा की इबादत का भाव था। अतः उन्होनें न कोई उपाय किया, न किसी प्रकार का तक़ामुल किया, न अक़्ल व दिमाग़ की कोई आवाज़ सुनी, बल्कि ख़तरे से बिना डरे हुए नमरूद की जलाई हुई आग में कूद गये।

बेख़तर आतिश–ए–नमरूद में कूद पड़ा इश्क़!
अक़्ल है महवो तमाशाए लबे बाम अभी!!

उनकी इस प्रकार से स्वयं को अल्लाह के सुपुर्द कर देना अल्लाह को पसंद आया। उनको जान प्यारी न थी। बल्कि मुहब्बत व फ़ना हो जाने का यही जज़्बा मक़सूद था। अतः आग को आदेश दिया गया कि:

"ऐ आग! इब्राहीम के लिये ठन्डी और सलामती हो जा।" यह त्याग का आरम्भ था और उस महान त्याग के लिये राह का हमवार होना था जिसको हर साल पुनर्जीवित करना उम्मत–ए–मुस्लिमा के लिये ज़रूरी कर दिया गया और जिससे बढ़कर इस्लाम व सुपुर्दगी की कोई मिसाल नहीं।

शिर्क व बुतपरस्ती और उसके हर प्रकार के प्रदर्शन से नफ़रत और अल्लाह वहदुहु ला शरीका लहू की मुहब्बत, उसकी उपासना का भाव, उसके रास्ते में सबकुछ कुर्बान कर देने की इच्छा और अपने बन्दे होने का एहसास ही इस्लाम की वास्तविकता है। यही वह रूह है जो आदम (अलैहिस्सलाम) के दिल में पुतले में फूंकी गयी। फिर शरीअते इस्लाम से मन्सूब होकर इस सिलसिले की आख़िरी उम्मत यानि मुहम्मद (स0अ0) की उम्मत में उदय हुई। यही मनुष्य का स्वभाव है, जिसे कुरआन करीम ने "क़ल्ब–ए–सलीम" के नाम से याद किया है। इस्लाम की इसी वास्तविकता ने कुर्बानी और आज़माइश के समय हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) को साबित क़दम रखा। इसी जज़्बे ने उनके हाथ में छुरी थमा दी कि प्रिय सुपुत्र को ज़िबह करके मासवी अल्लाह की मुहब्बत की कुर्बानी कर दें। इसी हक़ीक़त ने हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सलाम) की गर्दन झुका दी ताकि इस जान को अल्लाह की राह में कुर्बान कर दें।

हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने ख़्वाब की सूचना देने के बाद बेटे से जब मर्ज़ी चाही तो वह फ़रमाबरदारी व अल्लाह के हुक्म के सामने सर झुका दिया और राहे ख़ुदा में कुर्बान होने के तमाम हुदूद से आला थे। उन्होंने जो जवाब दिया उसमें पूरे इस्लाम का निचोड़ आ गया। शरीअते इस्लामी का पूरा ख़ुलास पेश कर दिया गया: "अर्थात ऐ अब्बा हुज़ूर! यह तो अल्लाह की मर्ज़ी और उसके हुक्म का इशारा है, आपको जिस चीज़ का हुक्म दिया गया है उसे बिला तामिल बजा लाइये, अगर उसकी मर्ज़ी हुई तो आप मुझे सब्र करने वालों में पायेंगे।

यह सदा इस्माईल की नहीं बल्कि इस्लाम की सदा थी। उन्होंने अपने एक वाक्य में रहती दुनिया तक के लिये पैग़ाम दे दिया कि अल्लाह तआला की तरफ़ से जिसका हुक्म दिया जाये तो बिला ताम्मुल उसको बजा लाओ, फिर न नफ़्स के तक़ाज़े ग़ालिब आयें, न माल व दौलत की चाहत हावी हो, न बीवी बच्चों का प्यार दामनगीर हो, न दुनिया की हवस सामने दिखे, न मौत का डर और न जीने की तमन्ना हो, बस एक ही जज़्बा, इस्लामी जज़्बा हो, रब की ख़ुशनूदी के हुसूल की कोशिश हो, इस्लाम और मुसलमान होने की आला तरीन मिसाल थी। इससे बढ़कर आसमान की आंखों ने न कोई मिसाल देखी, और न अब मुमकिन है, बाप–बेटे दोनों अल्लाह की मंशा के आगे सर झुकाए हुए , एक अपने लख़्तेजिगर को कुर्बान करने पर कमरबस्ता तो दूसरा राहे ख़ुदा में जान का नज़राना पेश करने को बेचैन व बेक़रार, यह हक़ीक़ते इस्लाम ही की महवियत का ग़ल्बा था, जिससे उनका नफ़्स फ़ना हो गया था और ईमान की बक़ा हासिल हो गयी थी। उनकी यह कुर्बानी बारगाहे इलाही में न सिर्फ़ कुबूल हुई बल्कि रहती दुनिया तक के लिये मुसलमानों का शेआर क़रार पायी।

इस्लाम का अर्थ किसी चीज़ का सौंप देने और इताअत में अपनी गर्दन झुका देने के हैं। इस्लाम की वास्तविकता यही है कि इन्सान के पास जो कुछ है उसे अल्लाह तआला के हवाले कर दे। उसकी तमाम ताक़ते,

उसकी सारी इच्छाएं, उसकी सारी प्रिय चीज़ें एक लेने वाले के सुपुर्द हो जाएं वह अपने तमाम क़वाए जिस्मानी के साथ बग़ावत मोल ले और अल्लाह के एहकाम की इताअत को अपना शेआर बना ले। यही हक़ीक़ते इस्लाम और क़ानूने फ़ितरत है, जिसकी मांग हर इन्सान से की गयी है। हर किसी की फ़ितरत को इस इस्लामी फ़ितरत से जोड़ा गया है। अपनी फ़ितरते इन्सानी के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने की हिदायत तमाम आसमानी किताबों में है और तमाम नबियों ने अमलन इसकी दावत दी ताकि यह दुनिया अमन व आतिशी का गहवारा बने और यहां बसने वाले उसी एक ख़ुदा की अब्दियत का मज़हर हों। जो पूरी कायनात का ख़ालिक व मालिक है। लेकिन जब–जब फ़ितरत से बग़ावत की गयी तो ख़ुश्की व तरी में फ़सादे अज़ीम बरपा हुआ और यह दुनिया वहशत और ज़िन्दगी की आमाजगाह बन गयी, जहां न इन्सानी जानों का एहतराम बचा और न ख़ुदा की बन्दगी का जज़्बा बल्कि सलतनतों का दौर दौरा रहा और इन्सानों ने अपने ही हाथों माबूद बना लिये जो कि अल्लाह तआला के ग़ैज़ व ग़ज़ब का ज़रिया हैं और उसके ग़ज़ब से सिर्फ़ उसी की ज़ात बचा सकती है।

यही दर्स हज़रत इब्राहीम ने अपने उस्वाए हुस्ना के ज़रिये दिया है, उसकी अमली तफ़सीर के लिये दानों बाप बेटों ने अगली क़ौमों में एक ऐसे बरग़ज़ीदा रसूल की दुआ की थी जो अल्लाह की आयतें पढ़कर सुनाए, इल्म व हिकमत की तालीम दे और नुफ़ूस व क़ुलूब की इस्लाह करे। यह दुआ उनकी ज़बान से निकली थी, जिनमें से एक ने राहे ख़ुदा में जज़्बात व इरादे की क़ुर्बानी पेश की थी और दूसरे ने अपनी जान व नफ़्स कीं यानि दोनों ने अपने महबूबतरीन मताओं को राहे इलाही में लुटा दिया था, ख़ुदा ने उन दोनों की दुआ क़ुबूल की और हज़रत मुहम्मद स0अ0 कलामे इलाही की मुकम्मल तस्वीर बनाकर भेजे गये और इस्लाम को मुकम्मल दीन की सूरत अता की और उम्मते मुहम्मदिया को ईसार व क़ुर्बानी, फ़नाइयत व लिल्लाहियत और इस्लामियत की तालीम इस तरह से दी कि: "यानि तुम अपने बात इब्राहीम की मिल्लत हो, उन्होंने तुम्हारा नाम "मुसलमान" रखा है, और एक जगह इरशाद फ़रमायाः "मिल्लतों में सबसे बेहतरीन मिल्लत इब्राहीम की मिल्लत है।" ग़रज़ कलामे पाक ने कामिल ज़िन्दगी के सिर्फ़ दो नमूने पेश किये और उनकी पैरवी की दावत दी गयी, एक हज़रत इब्राहीम और दूसरी मुहम्मद स0अ0 की हयाते तयियबा।

ईदुलअज़्हा के दिन क़रीब आते जा रहे हैं। इसके लिये तैयारियां भी शुरू हो रही हैं। जानवरों की ख़रीद–फ़रोख़्त का सिलसिला शबाब पर आ रहा है, उसमें एक दूसरे से सबक़त ले जाने की कोशिश होगी। अख़बारों में पूरी रिपोर्टें आयेंगी कि फ़लां ने फ़लां जानवर इतनी लागत में ख़रीदा। नाम व नुमूद के हुसूल की एक दौड़ होगी जिसमें न जाने कितनी गुस्ताख़ियां होंगी, ईद के दिन मुसलमान उन जानवरों को क़ुर्बान कर देंगे ओर समझेंगे कि सुन्नते इब्राहीमी की याद को ताज़ा कर दिया और एक फ़र्ज़ अदा हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि फ़र्ज़ तो ज़रूर अदा हो गया लेकिन शायद ज़हनों में यह बात न आयी हो कि क्या अल्लाह तआला ने हज़रत इब्राहीम से किसी जानवर की क़ुर्बानी चाही थी?क्या जानवर क़ुर्बान करते वक़्त दिल व दिमाग़ के किसी हिस्से में यह ख़्याल भी आता है कि अल्लाह तआला को उस जानवर के गोश्त व ख़ून की कुछ ज़रूरत नहीं। बल्कि उसको पाक व साफ़ दिल चाहिए। उसके नज़दीक जानवर से बढ़कर उस मन की क़ुर्बानी चाहिये जो हर बुराई पर आमादा करता है और शैतान मलऊन की पैरवी करता है। अपने जज़्बात व एहसास की पैरवी करता है। अपनी ज़रूरतों व दीनी तक़ाज़ों की ख़ुशनूदी रब के सामने क़ुर्बान कर देने का जज़्बा चाहिये। इसीलिए कहा जाताह" कि क़ुर्बानी के लिय जानवर पहले से ख़रीद लिये जाए। ख़ुद ही उनकी देखभाल की जाए और ईदुल अज़्हा के मौक़े पर अपने ही हाथों से उनकी गर्दन पर छुरी चलायी जाए ताकि उससे जो उन्स व लगाव पैदा हुआ उस पर पजबर करते हुए अल्लाह के हुक्म के सामने उसको क़ुर्बान कर दें। और इस तरह नफ़्स के ख़िलाफ़ करने , बुराई से ख़ैर की तरफ़ उसका रुख़ मोड़ने की एक मश्क हो जाए, अगर यह जज़्बा है तो यक़ीनन आपकी क़ुर्बानी बारगाहे इलाही में क़ुबूल है, वरना दूसरे बहुत से कामों की तरह यह भी एक काम होगा, जो दिखावे से भरा हुआ होगा और अल्लाह के यहां जिसकी कोई हैसियत नहीं होगी।

"अल्लाह तआला तक न तो क़ुर्बानी का गोश्त पहुंचता है और न उसका ख़ून पहुंचता है, बल्कि उसके दरबार में तुम्हारे दिल का तक़वा पहुंचता है।"

दरूद व सलाम

मशहूर हदीस है कि:

"एक बार हुज़ूरस०अ० मेम्बर पर तशरीफ़ ले गये, पहले ज़ीने पर क़दमे मुबारक रखा तो फ़रमाया, आमीन, दूसरे पर ले गये तो फ़रमाया तो आमीन, तीसरे पर क़दम रखा तो आमीन कहा। सहाबा ने बाद में पूछा कि या रसूलुल्लाह स०अ० आपकी ज़बान मुबारक से हम लोगों ने तीन बार आमीन का लफ़्ज़ सुना मगर वजह नहीं मालूम हो सकी। आप स०अ० ने फ़रमाया कि मैं जब मेम्बर पर गया तो हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम आए तो उन्होंने कहा, वह आदमी नामुराद है जो अपने मां—बाप को बुढ़ापे की हालत में पाए और उनकी ख़िदमत करके जन्नत न पा सके, मैने आमीन कहा। दूसरे ज़ीने पर पहुंचा तो हज़रत जिब्राईल ने कहा कि बदबख़्त है वह शख़्स जिसके सामने आपका नाम नामी आये और वह दरूद शरीफ़ न पढ़े, जब मैंने तीसरे ज़ीने पर क़दम रखा तो उन्होंने कहा, बदबख़्त है वह शख़्स जो रमज़ानुल मुबारक को पाये और इबादत करके अपनी मग़फ़िरत न करा सके।"

ऊपर दी गई हदीस से दरूद शरीफ़ की अहमियत मालूम हो जाती है। इसलिए हर मुसलमान मर्द व औरत पर लाज़िम है कि वह दरूद शरीफ़ से ग़ाफ़िल न हो। अपने अक्सर वक़्त को इस मुन्नवर कलिमे से रोशन करता रहे, यह कितनी एहसान फ़रामोशी की बात है कि जिस ज़ाते गिरामी के एहसान हम पर बेशुमार हुए हैं, दुनिया में जो कुछ हमारी इज़्ज़त है, जो तौक़ीर है, जो खा कमा रहे हैं, यह सब स ज़ाते गिरामी के कुदूम मैमनत लजूम का नतीजा है, वरना हमारी हैसियत क्या है? दुनिया की सारी इन्सानियत आप स०अ० के ही दम क़दम से है। आप स०अ० दुनिया में तशरीफ़ लाये, दुनिया को इन्सानियत का प्याम दिया। ज़िन्दगी गुजारने का सलीक़ा बताया। इस्लाम जैसा अज़ीमुलमुरत्तब मज़हब अता किया और ख़ुदा की तरफ़ इस ईमान व यक़ीन की दौलत बख़्शी, हम उस ज़ाते गिरामी की ख़िदमत में दरूद शरीफ़ का हदिया पेश करने में बुख़्ल से काम लें।

कुरआन का इरशाद है:

"बेशक अल्लाह और उसके फ़रिश्ते रसूलुल्लाह स०अ० पर दरूद भेजते हैं, ऐ ईमान वालों! तुम भी उन पर दरूद व सलाम भेजो।" (सूरह अलएहज़ाब: ७)

मौलाना मुहम्मद सानी हसनी रह०

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Postal Reg. No.
RBL/NP -19

Issue: 09 | SEPTEMBER 2017 | VOLUME: 09

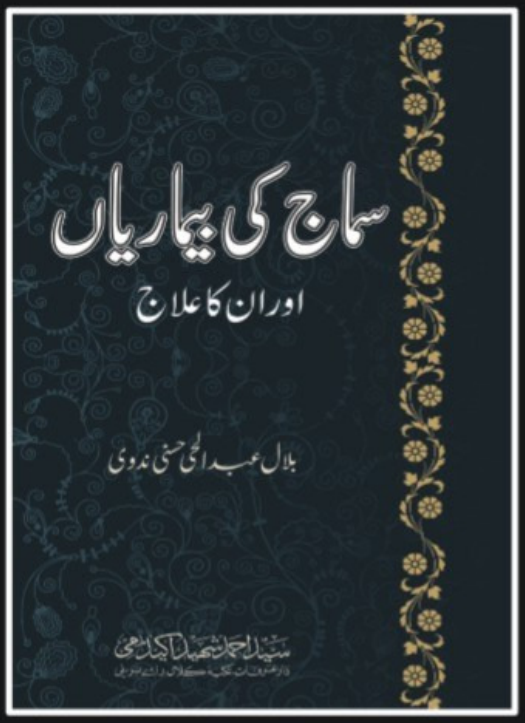

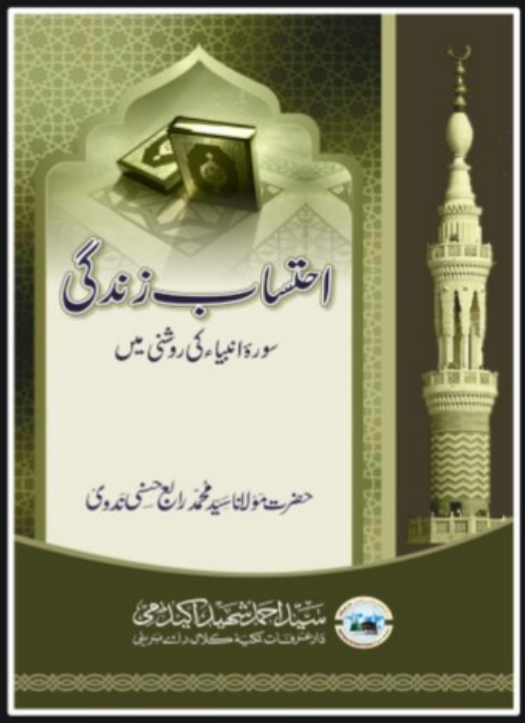

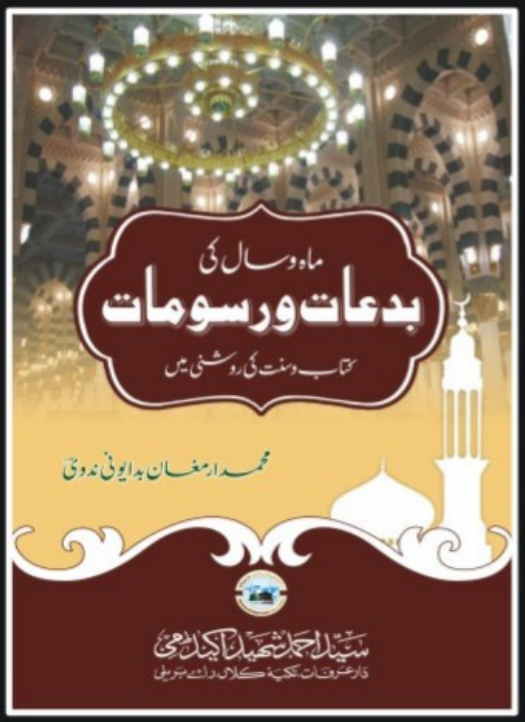

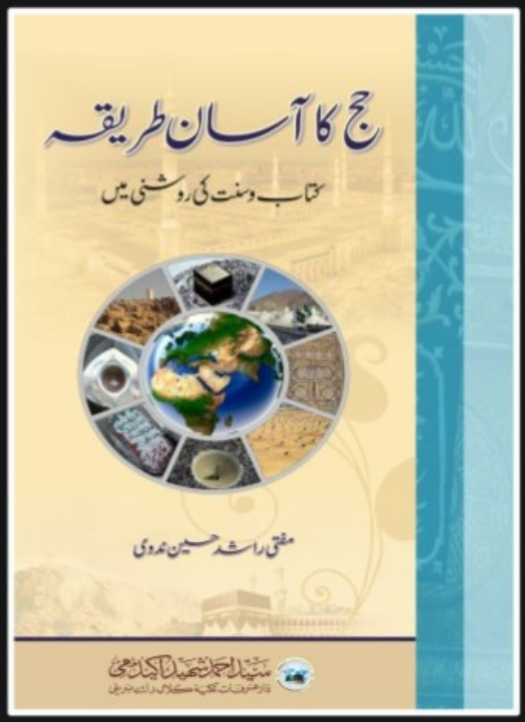

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.